वर्ष ६, अंक १

श्रीकृष्णाय नमः

आश्विन पूर्णिमा १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		१
२.	विदेह जनक का जीवन चरित्र [ले० भक्त रत्न श्री मथुराप्रसाद जी		२
३.	राम (कविता) (ले० श्री श्याम विरही		४
४.	श्री गीतान्तर्गत संन्यास निर्णय [ले० राम कुमार रघुवीर दास जी		५
५.	नाग नथैया (कविता) [ले० श्री बदरी प्रसाद जी मिश्र		८
६.	षट् प्रमाण [ले० श्री म० राम जी		८
७.	योग साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		११
८.	भक्त की प्रार्थना (कविता) [ले० श्री शोभाराम धेनु सेवक		९
९.	पुराण का वेदत्व प्रतिपादन [ले० श्री आचार्य मदन मोहन जी गोस्वामी		१६
१०.	तुलसी कृत रामायण श्रीराम चरित्र की रेर्गतहासिकता में सन्देह [ले० श्री महावीर प्रसाद जी		१७
११.	जप [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी		२०
१२.	भक्त की भावना (कविता) [ले० लक्ष्मी प्रसाद जी		२२
१३.	गो० श्यामदास जी [ले० श्री अयोध्या प्रसाद जी		२३
१४.	इन्दु पै मलिन्द है (कविता) [ले श्रीराम निहोरा प्रसादजी]		२७
१५.	दीपक दीप्ति (कविता) [ले० महाकवि पु० प्रतापनरायणजी]		२८
१६.	भगवान् का भरोसा [ले० श्री विलासराय जी डालमिया		२९
१७.	वाक्य सुधा		३०
१८.	भजन [संग्रहकर्ता केशवदेव ब्रह्मचारी		३१

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२५)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१२१)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१११)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१२०)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुर।	१०१)
चौधरी शिवसहाय जी कौसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुआ जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तं.पखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	२५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)
	५)

परमधाम-गमन

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन ता० १, नवम्बर १९३४ | अंक १ पूर्ण संख्या ६७

वेदोपदेश

अमी ये सप्तरश्मयस्तत्रा मे नाभिरात्तता ।
त्रितस्त्रेदाप्त्यः स जामित्वायरेभति वित्तंमे अस्य रोदसी ॥ १ ॥

ये जो सूर्य की सात किरणें हैं, उनमें मेरी नाभि, मर्मात्मा या वासस्थान है। यह बात आप्त्य त्रित जानते हैं तथा कूप से निकलने के लिये रश्मिसमूह की स्तुति करते हैं। द्यावा पृथिवी मेरा यह विषय जानो ॥ १ ॥

सुपर्णा एन आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यहतीरपोवित्तंमे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥

सर्वव्यापी आकाश में सूर्य की रश्मियां हैं। विशाल जल-राशि पार करते समय, मार्ग में, सूर्य-रश्मियां अरण्यकुक्कुर या वृक को निवारण करती हैं। द्यावा पृथिवी मेरा यह विषय जानो ॥ २ ॥

जनक विदेह का जीवन चरित्र

[भक्तरत्न श्री मथुराप्रसादजी 'मयूरेश']

गतांक से आगे

जनक महाराज उस सेठानी के भविष्य ज्ञान को मन ही मन में सराहते हुए उस मैना की प्रतीक्षा में अति व्याकुल रहने लगे पांच महीने का समय बड़ी कठिनाई से काटा-छटे महीने आप बगीचे में फवारे के पास खड़े होकर कहने लगे-अरी मधुर भाषिणी चतुर मैना तू कहाँ है कब दर्शन देकर मेरे चित्त का समाधान करैगी। इतने में वृक्ष के ऊपर से मैना बोली, महाराज जनक! आप अभी तक उसी झंझट में पड़े क्यों अपना अमूल्य समय व्यर्थ बिता रहे हैं। आप अपने राज काज में मन लगाकर ईश्वर आराधन में तत्पर होजिये। इसी में आप का कल्याण है। उन स्त्री पुरुषों को झरोके में देख कर मैं क्यों हंसी थी। इस पूर्व जन्म के रहस्य के खोज में पड़ कर आप को कुछ लाभ न होगा।

जनक नरेश उस मैना से बोले, अरी भविष्य ज्ञान की मूरत मैना मेरा मन किसी कार्य में नहीं लगता उसी खोज में विकल रहता है कृपा करके यह रहस्य मुझे बतादे मैं आजन्म तुझे धन्यवाद दूंगा।

तब मैना बोली-महाराज मैं सत्य कहती हूं आपका हित इसी में है। यह आप हठ ही करते हैं तो आप को मैं विचारने के लिये और समय देती हूं। तीन वर्ष के बाद आप के नगर का निवासी आपको बुलावेगा आप चले जाना। वहां एक लड़की से आपको सारा भेद मिल जायगा। (इतना कह कर मैना उड़ गई) राजाजी को तीन वर्ष काटना कठिन होगया। तीन वर्ष बीत जाने पर नगर सेठ राजा के पास आया। और निवेदन किया कि श्री महाराज मेरे एक कन्या की सगाई है। उस उत्सव में आप अवश्य पधारिये। विशेष कारण यह है कि यह बालिका स्वयं आपको याद किया करती है।

महाराज ने स्वीकार कर लिया, और सवारी लगाकर पधारे। जब सगाई का दस्तूर हो चुका तब यह कन्या एकान्त में राजाजी की गोद में आ बैठी और कहने लगी।

जनक महाराज आप आगये, (राजा जी असमंजस में पड़ कर कुछ न बोले) लड़की बोली आप मुझे जान गये या नहीं, मैं वही मैना हूं जो आपको बगीचे में मिली थी और वैश्य पत्नी भी मैं ही थी। मेरे हंसने का कारण यह था कि यह दम्पती पूर्व जन्म में माता पुत्र थे मुझे हंसी यह देखकर आई कि इस पुरुष ने पहले जन्म में इस स्त्री के स्तन पान किये थे अब उसी स्त्री के स्तन

पत्नी मान कर मलता है क्या विचित्र लीला भगवान् की माया की है।

उस कन्या के ऐसे वचन सुनकर जनक महाराज अचरज में डूब गये और टकटकी लगाकर उसका मुख ताकते रहे।

कन्या हंस कर फिर बोली महाराज संसार चक्र की लीला अद्भुत है जीवात्मा वासनाओं के जाल में फंसा हुआ कभी कीट कभी पतंग कभी पक्षी कभी पशु अनेक योनियों में जन्मता मरता है कभी मूढ योनि वृक्ष पाषाण आदि में जन्म लेता है। मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से मिलती है श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। श्रेय पंथ में दैवी संपत्ति को ग्रहण करके सद्गति को प्राप्त होता है, और प्रेय अविद्या वश नाना योनि में जाकर कष्ट पाता है। महा दुःख दाई चौरासी चक्र से निकलने के लिये प्रभु की भक्ति ही मुख्य उपाय है। महाराज पूर्व तथा भविष्य जन्मों का रहस्य मैं क्या बता सकती हूं एक महात्मा योगी आपको मिलेंगे उनसे समाधान हो जायगा। (इतना कहकर लड़की भाग गई)

जनक महाराज को उत्कट इच्छा अपने पूर्व जन्म तथा भविष्य परिज्ञान की हुई और इसी चिन्ता में रोगियों की सी हालत होगई। कुछ दिनों बाद एक महात्मा योगीराज से समागम हुआ। राजा ने अपने पास ही उन्हें ठैरा कर यही प्रश्न किया कि मैं पहिले जन्म में कौन था और भविष्य क्या है ? महात्मा ने बहुत समझाया कि इस संकट में पड़ना अच्छा नहीं। परन्तु राजा ने अपनी हठ न छोड़ी। तब महात्माजी ने आज्ञा दी कि विदर्भ देश में सुविचार शील ब्राह्मण की विधवा कन्या से समाधान तुम्हारा होगा वहां चले जाओ तुम्हारे वापिस आने तक हम यहीं ठैरेंगे।

राजाजी बड़ी कठिनाइयों को सहते हुए विदर्भ नगरी में जा पहुंचे। सुविचार शील ब्राह्मण का मकान पूछ कर उस के घर पहुंच गये। ब्राह्मण बड़ा भारी पंडित ज्ञानी और योगी था उसने इनको अतिथि समझ कर आदर पूर्वक अपने स्थान पर ठैरा लिया।

तीन दिन तक कोई अवसर उस ब्राह्मण की विधवा कन्या से बात करने का न मिला। चौथे दिन पंडित किसी कार्य को घर से बाहिर गया हुआ था। उस समय उस लड़की ने राजा के निकट आकर स्वयं कह दिया कि आप राजा जनक हैं और आप को पूर्व जन्म का वृत्त जानने की उत्कट इच्छा है और एक योगी महात्मा ने मेरा पता आपको दिया है। परन्तु मैं वैधव्य धर्म का पालन कर रही हूं किसी पुरुष से एकान्त में बात नहीं कर सकती। मेरा पिता आने वाला है यद्यपि आप मेरे पिता समान ही हैं तथापि धर्म के बन्धन से मैं लाचार हूं और क्षमा चाहती हूं। केवल इतनी सेवा आपकी कर सकती हूं कि पता बता दूं। आप काशीपुरी में चले जाइये। वहां नगर सेठ की स्त्री सेठानी आपका समाधान कर देगी।

राजाजी काशी जा पहुंचे। नगर सेठ का मकान प्रसिद्ध था। जाकर ज्यों ही खड़ा हुआ। सेठानी ने झरोके से उसे देख लिया। और नौकरों को हुक्म देकर बड़े सत्कार से इन्हें उत्तमोत्तम महल में निवास दिया। और दृष्टि पड़ते ही पुकार कर बोली कि जनक महाराज पधारिये

पधारिये आपने बड़ी कृपा की। राजा अचरज में डूब गया कि इसने कैसे मुझे पहिचान लिया। सेठानी ने भोजन भी ऐसा अनूठा अत्युत्तम तैयार करके खिलाया कि राजधानी में भी ऐसा नहीं मिला था। कई दिन आराम देने के बाद सेठानी ने एकान्त में राजा से कहा कि महाराज आप पूर्व जन्म के खोज में पड़ कर क्यों इतना कष्ट उठा रहे हैं आपकी सुविचार शील की विधवा कन्या ने मेरे पास भेजा है सो मैं जानती हूं। परन्तु आप के हित की बात निवेदन करती हूं कि आप इस पूर्व जन्म तथा भविष्य के परिज्ञान के बखेड़े में न पड़िये आप जानने के पीछे बड़े संकट में पड़ जायेंगे। राजा बोला माता तुम सत्य ही कहती हो। परन्तु मेरा चित्त किसी कार्य में नहीं लगता जब तक मेरी यह इच्छा पूरी न होगी मैं किसी काम का नहीं हूं। तब सेठानी बोली यदि आप नहीं मानते तो चम्पावती पुरी में चले जाइये वहां का राजा विवेकसिंह निपूता है। आपके पहुंचते ही उस राजा के पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु वह तीन घड़ी जीकर मर जायगा। जब उसका राजकर्मचारी गाड़ने के लिये मसानों में ले जावें आप भी पीछे चले जाना, उस स्थान को देख कर जहां वह दफन हो छिप कर वहीं डेर जाना। जब कर्मचारी सब वहां से चले आवें तब आप गंगा समीप है उसमें स्नान करके एक बर्तन में थोड़ा जल ले आना और मुर्दे बालक को जमीन से निकाल कर थोड़ा जल से स्नान कराके उसके तिलक लगाना और सुगंधित हार पहनाना पीछे उसे अपनी गोद में लिटा कर उससे प्रश्न करना वह आपके सब प्रश्नों का उत्तर भली प्रकार देकर आपका समाधान यथेष्ट कर देगा।

राजाजी तुरन्त चम्पावती को चल दिये और वहां पहुंच कर सारी बातें जो सेठानी ने कही थी ज्यों की त्यों पाई। और जैसा उसने कहा था वैसा ही किया। बालक को स्नान कराके हार पहनाके तिलक लगाकर राजा ने ज्योंही गोद में लिटाया। उस बालक ने आंखें खोल कर गौर से इनके मुख को देखा। और हंसता हुआ बोला पिताजी प्रणाम। बहुत काल में दर्शन हुए आप महाराजा जनक हैं और मेरी माता सेठानी के भेजे आये हैं। आप अच्छी तरह राज काज में जीवन बिता रहे थे यह पूर्व जन्म के वृक्ष की खोज बुरी है इस संकट में आप क्यों पड़ गये।

शेष आगे--

राम

(ले० श्री श्याम बिहारी)

चाह राम नाम जपूं प्रेम से पुकारूं देव !,
तुलसी के, सूर के, कबीर के, सुतत्व ज्ञान,
स्थित हृदय निस्पन्द निःस्व दीनाराध,
देखा करूं चाह यही सांवला अनूठा रूप,
नित्य तेरा ताक रहे यही हो हमारा काम।
गीता ज्ञान, गाथा को सुनादें बोध प्रेम दाम॥
प्याले उलसें पीला एकी घूंट प्रेम जाम।
प्रेम से पखारूं तेरे पावन पदों को राम॥

श्री गीतान्तर्गत संन्यास निर्णय

[लेखक राजकुमार रघुवीरदास जी]

श्रीभगवद्गीता में संन्यास शब्द का प्रयोग जो आता है उसका अर्थ अत्यन्त ही माननीय है। बाह्य दृष्टि से संन्यास विषय में परस्पर वाक्यों का विरोध जैसा प्रतीत होता है परन्तु वास्तविक अर्थ स्फुट होने पर भगवत् का गहन आशय स्पष्ट जानने में आ सकता है। भगवान ने एक जगह कहा है कि "नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेना धिगच्छति" अर्थात् संन्यास द्वारा ही नैष्कर्म्य संसिद्धि रूप फल भूत संन्यास दशा प्राप्त हो सकती है। एक जगह ऐसा कहा है कि 'न कर्मणा-मनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नुते। न च संन्यसना देव सिद्धिं समधिगच्छति" अर्थात् कर्मों को न करने रूप संन्यास से नैष्कर्म्य संसिद्धि प्राप्त नहीं होती है। यह दोनों में परस्पर विरोध जैसा दीखता है। एक जगह संन्यास से नैष्कर्म्यसिद्धि की प्राप्ति होना कहा है और दूसरी जगह संन्यास से नैष्कर्म्यसिद्धि की प्राप्ति न होना दिखाया, यही विरोध है परन्तु वस्तुतः केवल विरोधाभास ही है और दोनों बात यथार्थ ही है। इसके ऊपर विचार लाने पर भगवत् का आशय स्फुट हो जायगा "नैष्कर्म्य-सिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति" ऐसा जो भगवान् ने कहा है इससे संन्यास द्वारा ही संन्यास प्राप्त होना सिद्ध हुवा है एक संन्यास साधन रूप और दूसरा संन्यास फल रूप होना भी सिद्ध होता है। फल रूप संन्यास नैष्कर्म्य संसिद्धि रूप होने से उस दशा में बिलकुल अकर्म दशा का ही प्राप्त होना सूचित होता है। अवश्य करके जीव मात्र चित् स्वरूप होने से उसका स्वरूपतः चैतन्य स्वभाव जन्य क्रिया शक्ति अथवा चेतना का तो अभाव नहीं ही हो सकता है। तथापि फल अवस्था में समाधि की स्थिति संपन्न मुमुक्षु पुरुष को जीव की स्वभावतः चित् शक्ति से अतिरिक्त सर्व क्रियाओं का अभाव हो जाने से क्रिया शून्यत्वरूप अकर्म दशा प्राप्त होती है और केवल ध्येय जो परमात्मा का ही आभास उनको मनोमयी दृष्टि के केन्द्र में अविच्छिन्न रूप से दर्शित और अनुभवित रहा करता है और सब व्यवहार हो जाता है। इसी कक्षा की ध्रुवास्मृति, ध्यान, निर्बीज समाधि प्रसंख्यान और परा भक्ति आदिक अन्य भी संज्ञाएँ हैं इसी को ज्ञान की पराकाष्ठा रूप भक्ति योग भी कहते हैं इसी को कल्याण मार्ग की परिसीमा रूप स्थिति होने का सर्व आचार्यों की सम्मति पूर्वक सर्वानुमत सिद्धान्त माना गया है और यही संन्यास शब्द का मूल और अन्तिम अर्थ है। परन्तु इस प्रकार का संन्यास प्राप्त करने के लिये भी साधन रूप भगवान ने संन्यास ही को कहा है। यह जो

साधन रूप संन्यास है वह यज्ञ रूप कर्म रूपात्मक है। इस संन्यास में भगवान ने "काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः" इस वाक्य के अनुसार सांसारिक काम्य कर्मों के त्याग को ही संन्यास कहा है और इसी काम्य कर्मों के न्यास रूप संन्यास के अनुष्ठान द्वारा ही मूल और अन्तिम संन्यास की प्राप्ति होना प्रतिपादन किया है। भगवान् कहते हैं कि "कर्मणि अकर्मयः पश्येत्" अर्थात् कर्म में अकर्म को देखे इसका यही वास्तविक अर्थ है की यज्ञ रूप कर्मों को करने में ही अकर्म रूप संन्यास को देखें अर्थात् यही यज्ञात्मक कर्म रूप बीज में कल्याण वृक्ष जन्य अकर्मात्मक संन्यास रूप फल को देखें। अतः यज्ञ कर्मों को ही संन्यास गर्भित होने से कर्म करने से ही अकर्म दशा प्राप्त होती है। इससे यह सिद्ध हुवा की नैष्कर्म्य संसिद्धि रूप संन्यास की प्राप्ति जो संन्यास से ही होती है सो संन्यास कर्म रूप है क्योंकि अकर्म रूप संन्यास को फलित होने का भी भगवान् ने प्रतिपादन किया है। एक जगह कहा है कि नैष्कर्म्य संसिद्धि रूप फल संन्यास से प्राप्त होता है और दूसरी जगह कहा है कि वह अकर्म रूप फल संन्यास कर्म ही से फलित होता है। इससे यही सिद्ध होता है कि अकर्म रूप फल संन्यास की प्राप्ति कराने वाला कर्म ही को काम्य कर्म के त्याग पुरस्सरका संन्यास कहा है। अतः फल संन्यास को प्राप्त कराने वाला "कर्म रूपात्मक" संन्यास ही है यह स्पष्ट ही सिद्ध हुवा और साधन रूप कर्मात्मक संन्यास को कर्माभाव रूप अर्थात् अकर्मात्मक संन्यास मानने से सिद्धि नहीं होती ही ऐसा दिखाने के लिये "न कर्मणा मनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नुते। न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति" इस भगवान् के वाक्य का आशय भी अनुकूल और स्पष्ट ही हो गया अतः स्वरूपतः कर्म को छोड़ के अकर्म अर्थात् कर्माभाव रूप संन्यास से नहीं परन्तु काम्य कर्म के न्यास पूर्वक यज्ञ कर्म रूपात्मक संन्यास द्वारा ही अकर्म अर्थात् नैष्कर्म्य संसिद्ध रूप अन्तिम फल संन्यास का प्राप्त होना ही सिद्ध होता है। बिलकुल अकर्म होने का तो भगवान् स्पष्ट ही निषेध करते हैं "मा ते संगोस्त्वकर्मणि" तु अकर्मरत न हो इस तरह अकर्म निष्ठ न होने की अर्जुन को भगवान् साफ आज्ञा ही करते हैं और यहां तक कहा है कि "अकर्मणि कर्म यः पश्येत्" अर्थात् अकर्म बनने से तो सांसारिक बाधक कर्मों का ही उदय देखें अर्थात् साधन काल जो कि मनुष्यों के लिये सदा के लिये ही स्वाभाविक है उसमें अकर्मरत बन जाने से वह संसार गर्भित होने से उससे संसार ही फलित होता है। अतः जिस पर अपना अधिकार नहीं है ऐसी स्वतः प्राप्त होने वाली समाधि संपन्न अकर्म रूप फल दशा पर अपना अधिकार मान बैठ कर अकर्म बन जाना तो महान् ही भय प्रद और बिलकुल निषिद्ध ही है। कर्मात्मक संन्यास ही साधन है और अकर्मात्मक संन्यास फल है और मनुष्य मात्र का अधिकार कर्मात्मक साधन रूप संन्यास में ही है। साधन करना पुरुष के आधीन है और फल देना पुरुषोत्तम के आधीन है। कर्म किया जाय तो फल तो अवश्य ही स्वतः कर्मानुगामी बना है परन्तु फल के ऊपर साधक का किसी भांति भी अधिकार नहीं है। भोजन करना मनुष्य के आधीन है परन्तु तृप्ति होना यह तो स्वाभाविक ही है। इतना है कि तृप्ति के ऊपर मनुष्य का अधिकार न होने पर भी भोजन करने से तृप्ति अवश्य ही होगी इतना विश्वास तो होना ही चाहिये। वैसे ही कर्म करने से अकर्म

दशा अवश्य ही प्राप्त होगी इस विश्वास के साथ अपना अधिकार तो कर्म करने पर ही है और अकर्म रूप फल में अपना अधिकार नहीं है यह भी साथ साथ सदैव याद रखना भी उतनी ही आवश्यक बात है । अतएव परमात्मा ने साफ साफ कह दिया है कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" अतः काम्य कर्म को छोड़ के यज्ञ रूप कर्मों को करने का ही नाम संन्यास है और इसी कर्मात्मक सन्यास से ही अकर्म रूप संन्यास की प्राप्ति संभावित है । इसी से भगवान् ने कहा है कि "यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्य मेव तत्" अर्थात् यज्ञ दान और तपादिक कर्म का कभी भी भूल से भी त्याग नहीं करना क्योंकि उसी से नैष्कर्म्य संसिद्धि रूप पर संन्यास की प्राप्ति हो सकती है । फल की वह अकर्म दशा प्राप्त होने पर भी बोध्यनात्मक दशा का चिर-स्थायी रूप से स्थिर होना भी बहुत ही दुरूह है, और ध्यान छूटने पर उत्थान दशा में फिर भी कर्मों में ही लगना पड़ता है । क्योंकि अखंड समाधि प्राप्त होना तो श्री सदा शिवजी जैसे परम योगीराज को भी कठिन है । तब अन्य जीवों की तो बात ही क्या करना क्यों कि जीव को तो शरीर यात्रा भी कर्मों के ऊपर ही अवलंबित है । शिवजी का भी समाधि में लग जाना और समाधि का छोड़ना शास्त्रों में कई जगह आता है । इससे समाधि दशा का अविच्छिन्न रूप से सतत सर्वदा होना मानो असंभव जैसा ही है । गो स्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज मानस रामायण में साफ लिखते हैं कि "जो जीव के रह ज्ञान एक रस । ईश्वर जीवहु भेद कहहु कस" और "ज्ञान अखंड एक सीतावर" अतः व्युत्थान अवश्य ही होता है साधन दशा में अवश्य ही आना पड़ता है और अवश्य ही कर्मों में लगना पड़ता है और उसी में लगे रहने से फिर भी समाधि सुख का प्रसाद मिलता रहता है और देह विलीन होने बाद साक्षात् पद की प्राप्ति भी उसी से भगवत् कृपा द्वारा होती है । अतः कर्म योग अर्थात् यज्ञकर्मात्मक संन्यास ही समाधि रूप फल संन्यास का जनक और कारण भूत होने से जीव मात्र का कर्म करने में ही अधिकार और कल्याण है । यज्ञ से ही समाधि और मुक्ति फलित होती है । यज्ञ भी कई प्रकार के हैं परन्तु भगवान् ने स्वयं कहा है की "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" अर्थात् जप यज्ञ तो स्वयं मेरा ही स्वरूप है, इस भगवत् वचन से जप ही सर्वोत्तम यज्ञ है। भगवान् के "मामनुस्मरन्" पुनः "मामनुस्मर" इत्यादिक वाक्यों से भगवत् का स्मरण करना अर्थात् भगवन्नाम का जप करना यही मूल यज्ञ है, और इसी नाम रूप यज्ञ द्वारा कई भक्तों को कई बार भगवत् के साक्षात् दर्शन होने के कई एक चरित्र और प्रसंग हैं । इसी नाम यज्ञ स्वरूप कर्मात्मक संन्यास द्वारा ही समाधि स्वरूप फल संन्यास की प्राप्ति हो सकती है । अतः गीता में संन्यास शब्द का प्रयोग गौण और मुख्य अर्थात् काम्य कर्मों के न्यास यज्ञ कर्मों और समाधि दोनों के लिये किया गया है यह स्पष्ट ही सिद्ध होता है अतएव समाधि रूप अन्तिम फल संन्यास प्राप्त करने के लिये महा कल्याण प्रद भगवन्नाम के जप रूप साधन कक्षा के संन्यास का अच्छी प्रकार से अनुष्ठान करना यही चेतन मात्र का मूल कर्तव्य और श्रीमद्भगवद्गीता का साक्षात् सिद्धान्त है ऐसे श्री हरी नाम जपने वाले भक्तों की सदा जय जय जय ।

नाग नथैया

[बलदेव प्रसाद मिश्र]

घट घट वासी अविनासी ज्ञानराशी सुचि,
अग जग त्याग राग रचना रचैया हौ ।
शुभगति भगति प्रगति मति गति धाम,
काम-कमनीय करुणाकर कन्हैया हौ ।
कवि 'राजहंस' आस पूरन करनहार,
भवपाश नाशी अविनाशी यदुरैया हौ ।
मन में बने हो कालीनाग के नथैया,
पै हमहिं तो देखात काल नाग के नथैया हौ ॥

षट् प्रमाण

[डॉ० श्री महात्मा रामजी आश्रम]

१ प्रत्यक्ष प्रमाण

यावत्स्वस्थं अगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥

जीवात्मा के विवेक द्वारा जिस अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान होता है उस ब्रह्म को विषय करने वाली जो अन्तःकरण की वृत्ति है उस वृत्ति का निरूपण करते हैं । वृत्ति का सामान्य लक्षण क्या है? 'विषय चैतन्याभिव्यंजकोऽन्तःकरणा ज्ञानयोः परिणाम विशेषः वृत्तिः'। नेत्रादि इन्द्रियों के विषय जो घटपटादि पदार्थ हैं उन पदार्थों में अस्ति, भाति, प्रिय और रूप से व्यापक चैतन्य को विषय चैतन्य कहते हैं। उस विषय चैतन्य का अभिव्यंजक जो अन्तःकरण और अज्ञान का परिणाम है उसे वृत्ति ज्ञान कहते हैं । 'अस्ति व्यवहार जनक त्वं अभिव्यंजकत्वम्' यह घट है यह पट है इस व्यवहार का जनकपना ही इन वृत्तियों में विषय चैतन्य का अभिव्यंजकपना है। वह वृत्ति प्रमा अप्रमा, इस भेद से दो प्रकार की है। यथार्थ ज्ञान वाली 'प्रमा, कहलाती है और अयथार्थ ज्ञान वाली अप्रमा "बोधेऽहा वृत्ति वृत्तीद्ध बोधो वा प्रमा" चैतन्य का नाम बोध है। उस चैतन्य से प्रकाशित जो वृत्ति है वह प्रमा है अथवा उस वृत्ति के प्रकाशित चैतन्य का नाम प्रमा है। वह प्रमा भी ईश्वरा

अथवा प्रमा तथा जीवाश्रया प्रमा इस भेद से दो प्रकार की है। सृष्टि के आदि काल में आगे उत्पन्न होने वाले जगत् को विषय करने वाली माया की वृत्ति को श्रुति में ईक्षण इस नाम से कहा है। श्रुतिः- 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय'। उसने माया उपहित ईश्वरने 'मैं बहुत रूप से प्रकट होऊं' ऐसी इच्छा की इस ईक्षणा रूप वृत्ति में प्रतिबिंबित चैतन्य को ईश्वराश्रया प्रमा कहते हैं।

'अनधिगताबाधित विषयाकारान्तः करण वृत्ति प्रतिबिंबिताधित जीवाश्रया प्रमा॥'

अनधिगत कहिये अज्ञात् अर्थात् जो वस्तु पूर्वकाल में नहीं जानी गई हो तथा अबाधित जिस का बाध नहीं हो सके ऐसे विषय के आकार वाली अन्तः करण की वृत्ति में प्रतिबिंबित जो चैतन्य है वह जीवाश्रया प्रमा है। 'प्रमा करणं प्रमाणम्' प्रमा ज्ञान के करण अर्थात् साधन को प्रमाण कहते हैं। पूर्वोक्त जीवाश्रया प्रमा भी व्यवहारिकी प्रमा तथा पारमार्थिकी प्रमा इस भेद से दो प्रकार की है। अधिकारी पुरुष को गुरु उपदिष्ट तत्वमसि आदि वाक्य जन्य जो 'अहं ब्रह्मास्मि' यह प्रमा उत्पन्न होती है वह पारमार्थिकी प्रमा कही जाती है। घट पटादि रूप प्रपंच को विषय करने वाली वृत्ति को व्यवहारिकी प्रमा कहते हैं।

व्यवहारिकी प्रमा भी प्रत्यक्ष प्रमा अनुमिति प्रमा उपमितिप्रमा, शब्दप्रमा अर्थापत्तिप्रमा अभावप्रमा, इस भेद से छः प्रकार की है। प्रमा के भेद से प्रमा का करण का प्रमाण भी छः प्रकार का है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द अर्थापत्ति, अनुपलब्धि,।

प्रत्यक्ष प्रमा-"विषयचैतन्याभिन्नं प्रमाण चैतन्यं प्रत्यक्ष प्रमा" विषय चैतन्य से अभिन्न प्रमाण चैतन्य को प्रत्यक्ष प्रमा कहते हैं। एक ही चैतन्य उपाधियों के भेद से प्रमाता चैतन्य, प्रमाण चैतन्य, विषय चैतन्य, फल चैतन्य, इस भेद से चार प्रकार का कहा जाता है। अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्य को प्रमाता चैतन्य कहते हैं। अन्तः करण की वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य को प्रमाण चैतन्य कहते हैं घटादि विषय अवच्छिन्न चैतन्य को विषय चैतन्य कहते हैं। घटादि विषयों के आकार वाली वृत्ति में प्रतिबिंबित चैतन्य को फल चैतन्य कहते हैं। जब पर्यन्त अन्तःकरण आदि उपाधियाँ भिन्न भिन्न देश में स्थित होती हैं तब पर्यन्त अन्तःकरण आदि उपहित चैतन्यों का भी भेद रहता है। इसमें उदाहरण कहते हैं।

घटाकाश मठाकाशौ महाकाशे प्रतिष्ठितौ।
एवं मयि चिदाकाशे जीवेशौ परि कल्पितौ॥

जैसे घटाकाश, मठाकाश, महाकाश, इत्यादि आकाश का भेद घट, मठ आदि उपाधियों के भेद से प्रतीत होता है वास्तविक भेद नहीं है। जब घट को मठ के अन्दर स्थापित किया जाय तब घटाकाश, मठाकाश एक हो जाते हैं इसी प्रकार मठाकाश भी महाकाश में कल्पित है। ऐसे ही जीव चैतन्य ईश्वर चैतन्य, शुद्ध चैतन्य में कल्पित हैं। अर्थात् जब अन्तःकरण की वृत्ति विषय के आकार वाली होती है तब अन्तःकरण उपहित चैतन्य, तथा वृत्ति उपहित चैतन्य, और घटादि विषय चैतन्य, इन चैतन्यों का भी अभेद हो जाता है। दूसरा उदाहरण यह है। जैसे तालाब का जल किसी छिद्र द्वारा बाहर निकल कर क्यारी में फैल कर त्रिकोण, अथवा चतुष्कोण आदि क्यारी के आकार वाला हो जाता है। उस काल में तालाब के जल का तथा छिद्र द्वारा निकले हुये क्यारी के जल का अभेद होता है। इसी प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रादि छिद्र द्वारा निकल

कर बहिर देश में स्थित घटादि विषय के आकार को प्राप्त होती है उस वृत्ति में घटादि विषय अवच्छिन्न चैतन्य प्रतिफलित होता है अर्थात् प्रकाशित होता है।

वृत्ति और विषय दोनों की एक देश में स्थिति होने से वृत्ति उपहित चैतन्य, तथा विषय उपहित चैतन्य दोनों चैतन्यों का भी अभेद ही होता है इस प्रकार विषय चैतन्य से अभिन्न प्रमाण चैतन्य को प्रत्यक्ष प्रमा, कहते हैं। यह प्रत्यक्ष प्रमा भी बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा, अन्तर प्रत्यक्ष प्रमा इस भेद से दो प्रकार की कही जाती है। बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा भी शब्द प्रमा, स्पर्श प्रमा, रूप प्रमा, रस प्रमा, और गन्ध प्रमा इस भेद से पांच प्रकार की है। प्रमा के भेद से प्रमाण भी श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन और घ्राण ये पंच ज्ञान इन्द्रिय बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा के करण होने से पंच प्रमाण कहे जाते हैं। दूसरी अन्तर प्रत्यक्ष प्रमा भी आत्मगोचरा प्रमा, सुखादिगोचरा प्रमा, इस भेद से दो प्रकार की है। आत्मा को विषय करने वाली प्रमा आत्मगोचरा कही जाती है। सुख दुःखादिकों को विषय करने वाली सुखादिगोचरा कही जाती है। आत्मगोचरा प्रमा भी विशिष्ट आत्मगोचरा प्रमा, शुद्ध आत्मगोचरा प्रमा, इस भेद से दो प्रकार की है। मैं जीवहूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, इत्यादि अन्तःकरण के धर्मों को आत्मा रूप से विषय करने वाली प्रमा विशिष्टात्मगोचरा प्रमा कही जाती है। 'अहंब्रह्मास्मि' मैं शुद्ध आत्मा ब्रह्म रूप ही हूं। यह ब्रह्मात्मा के एकत्व को विषय करने वाली प्रमा शुद्धात्मगोचरा प्रमा कही जाती है। इस शुद्ध आत्मगोचरा प्रमा का करण रूप जो प्रमाण है उसमें आचार्यों का मत भेद है। वाचस्पति आदि विद्वान् तो मन को ही शुद्धात्मगोचरा प्रमा का कारण मानते हैं। तथा श्रुति आदि प्रमाण देते हैं।

'मनसैवानुद्रष्टव्यं, मनसैवेह नानास्ति किंचन'

"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः"

शुद्ध मन के द्वारा ही आत्मा साक्षात्कार करने योग्य है। मन के निर्मल होने पर ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने योग्य है। सूक्ष्म बुद्धि से आत्मा को देखते हैं। श्रुतियों से शुद्ध मन को ही आत्म गोचरा प्रमा का करण पना सिद्ध होता है।

अब शंकराचार्य आदि आचार्यों का मत दिखलाते हैं। वो कहते हैं कि मन इन्द्रिय रूप नहीं है इसलिये मन को करण रूपता नहीं हो सकती। अतः 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः' इस श्रुति ने मन को इन्द्रियों से पृथक् बतलाया है। किंवा सुख दुःखादिकों के साक्षात्कार में भी मन की करण रूपता नहीं है। कारण यह की सुख दुःखादि रूप सर्व वृत्तियों के प्रति मन ही उपादान कारण है।

'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव'

इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, वृत्ति ज्ञान और भय, यह सब मन के ही धर्म हैं। जो पदार्थ जिस कार्य के लिये उपादान कारण होता है वह पदार्थ उस कार्य के करण रूप नहीं हो सकता। जब सर्व वृत्तियों के लिये मन उपादान कारण है तब वह करण रूप किस प्रकार हो सकता है। अतएव विवेकादि चार साधन संपन्न अधिकारी पुरुष को गुरूपदिष्ट तत्त्वमसि महावाक्य के उपदेश से 'अहंब्रह्मास्मि'। इस प्रकार का अनुभव ज्ञान होता है। अतः गुरूपदिष्ट श्रोत्र सम्बन्धि वाक्य ही शुद्धात्मगोचरा प्रमा का करण है। इस प्रकार ये आचार्य मानते

हैं। यदि विचार करके देखा जाय तो केवल वाक्य आत्म साक्षात्कार के अर्थ वाले हैं उन वाक्यों को अनेक वार श्रवण करने पर भी बहुतों को आत्म साक्षात्कार नहीं होता। इसलिये मल विक्षेपादि दोष रहित शुद्ध सत्वगुण संयुक्त मन तो सहायक है और गुरूपदिष्ट श्रोत्र संबधि तत्त्वमसि आदि वाक्य कारण है। शुद्ध अन्त करण वाले अधिकारी को किया हुआ गुरु का उपदेश तत्काल ही प्रकाशित होता है। मलीन अन्तःकरण वाले पुरुष को वार २ उपदेश करने से भी कुछ लाभ नहीं।

इति प्रत्यक्ष प्रमा निरूपण।

योग-साधन

[ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

१०६. मन इन्द्रियों से उत्तम है। बुद्धि मन से उत्तम है। इच्छा शक्ति बुद्धि से उत्तम है। इच्छा शक्ति आत्म भावना या अध्यात्म शक्ति है। आत्मा इच्छा शक्ति से बढ़ कर है।

१०७. इच्छा शक्ति द्वारा तुम इन्द्रियों और मन को वश में कर सकते हो। इच्छाओं के नाश करने से, हठ से, ज्ञान योग के अभ्यास से, ध्यान, सन्तोष और तितिक्षा द्वारा तुम इच्छा शक्ति का विकाश कर सकते हो। इच्छा शक्ति सेनापति है, इन्द्रियं और मन इसके आज्ञाकारी हैं।

१०८. अपनी सुन्दरता का अभिमान मत करो। मामूली व्याधि से तुम्हारी सुन्दरता खराब हो सकती है और यह शरीर नाश को प्राप्त हो सकता है। चेचक, पैचिश, कुष्ठ, क्षयरोग आदि से तुम्हारा शरीर कुरूप और हास्य जनक हो सकता है।

१०९. यदि तुम में कुछ गुण हैं तो खयाल रखो दूसरों में इससे भी अधिक है, इससे तुम्हारे चित्त में नम्र भाव आवेंगे और तुम्हारा अहंकार नष्ट होगा।

११०. जिसका चित्त सदैव क्रोध और ईर्षा से जलता रहता है उसकी आत्मा में शान्ति किस तरह हो सकती है? जो नम्र है वह धन्य है क्योंकि शान्ति उसके ही चित्त में वास करती है।

१११. अपने जीवन की कुछ भी चिन्ता मत करो कि तुम क्या खाओगे और क्या पीओगे? इस बात का खयाल छोड़ दो कि तुम क्या वस्त्र धारण करोगे? वायु में उड़ने वाले पक्षी और चिड़ियों को देखो। वह न तो खेती करती हैं और न काटती हैं और न ही जमा करती हैं फिर भी परमात्मा उनको खाने को देता है। क्या तुम उनसे श्रेष्ठ नहीं हो?

११२. तुम में से कौन ऐसा है जो अपने स्थान की एक फीट जगह बढ़ा सकता है? जंगल के फूलों को देखो वह किस तरह बढ़ते हैं। वह न तो उद्यम करते हैं और न ही कातते हैं। यदि परमात्मा

पूछो वो पास के कपड़े पहना देता है जो कुछ काल में नष्ट होने वाली है तो क्या वह तुम्हारे कपड़ों की चिन्ता नहीं करेगा ? तुम में विश्वास की कमी है ।

९१३. पहले तुम परमात्मा के राज्य में प्रवेश करो और उस सत्य पदार्थ की खोज करके उसे प्राप्त करो फिर देखो सब कुछ तुम्हारा हो जावेगा ।

९१४. कल का विचार मत करो, कल अपनी खबर आप लेगा । आज का दिन ही काम करने के लिए पर्याप्त है । (सन्त मैथ्यू)

९१५. जो अपने आत्मा में सब को देखता है और सब में अपने आत्मा को देखता है वह किसी से भयभीत नहीं होता ।

९१६. अपने आत्मा को जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है । यह सब कुछ अपना आत्मा ही है, ऐसा श्रुति बल पूर्वक घोषणा करती है ।

९१७. जीवन मुक्ति समस्त सूक्ष्म और गुप्त वासनाओं के नाश होने पर होती है ।

९१८. वासनाएं दो प्रकार की होती हैं शुभ वासना और अशुभ वासना । यदि मनुष्य की इच्छा सिनेमा देखने की होती है तो अशुभ वासना समझनी चाहिए । यदि यह इच्छा होती है कि गीता पढ़े, जप करें या किसी महात्मा के दर्शन करने जावें तो यह शुभ वासना है। शुभ वासनाओं को बढ़ाना चाहिए और अशुभ वासनाओं को कम करना चाहिए । शुभ वासनाएं दान करना, यज्ञ करना, जप व तप करना इत्यादि हैं ।

९१९. अशुभ वासनाओं के नहीं रूप वेग को प्रयत्न करके शुभ वासनाओं में परिवर्तन कर देना चाहिए । अशुभ वासनाओं का शुभ वासनाओं में रूपान्तर कर देना होगा । शुभ वासनाओं की रक्षा करने से अशुभ वासनाएं आप ही नष्ट हो जाती हैं ।

९२०. जिस प्रकार सोने से मणिबन्ध, अंगूठी, और कड़े इत्यादि बनाए जाते हैं और एक ही सोने को भिन्न २ नाम व रूप दिए जाते हैं इसी प्रकार आत्मा या ब्रह्म के भी भिन्न २ नाम व रूप रख लिए जाते हैं ।

९२१. सत्य क्या है ? ज्ञान और शुद्ध प्रेम क्या है ? सत्य स्वयं अपने शुद्ध रूप में आप प्रकाशित होता है । सत्य को अपनी रक्षा के लिये किसी वकील या बैरिस्टर की आवश्यकता नहीं है । यह हाथ की हथेली में रक्खे हुए आंवले के सदृश है । सत्य का साक्षात् करो फिर समस्त दुःखों का आप ही नाश हो जावेगा ।

९२२. जिस प्रकार नारियल का वृक्ष अपने जड़ों में लिए हुए जल को स्वादिष्ट नारियल के फल के जल में तब्दील करके माली को वापिस देता है इसी प्रकार भले आदमी को जिससे सहायता मिलती है उस मनुष्य को वह बड़े नम्रभाव से उससे अधिक सहायता वापिस करता है ।

९२३. बाह्य रूप से पदार्थों को त्याग कर देने का नाम त्याग नहीं है । सच्चा त्याग तो पूर्ण रूप से वासनाओं के त्याग देने का नाम है और वासनाओं के त्याग के साथ अहंकार आप ही नष्ट हो जाता है । मोक्ष हृदय की ग्रन्थों के नाश होने से होती है ।

९२४. ज्ञानी अपने शरीर का त्याग प्रत्येक देश व काल में कर सकता है । जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते पड़जाने से वृक्ष की कुछ भी हानि नहीं होती इसी प्रकार ज्ञानी के शरीर का पतन होने से ज्ञानी की आत्मा पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता ।

९२५. किसी सन्त महात्मा के पूर्ण जीवन चरित्र को यथाक्रम वर्णन करना बड़ा कठिन

काम है क्योंकि महात्माओं का प्रत्येक क्षण मनुष्य जाति के कल्याण और ज्ञानवृद्धि के काम आता है। जिस स्थान पर सन्त एक रात्रि विश्राम करलेता है वही स्थान पवित्र हो जाता है। जिस जगह वह एक बार बैठता है वही पवित्र हो जाती है। जिन ग्रामों में से वह गुजरता है उनके नाम तबदील कर दिए जाते हैं। जिन नदियों में वह स्नान करता है उन नदियों के नाम बदल दिए जाते हैं। जिस सन्त ने अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है उसका प्रभाव अनन्त होता है। उसकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ?

६२६. भिन्न २ भावनाएं जैसे शोक, निराशा, अशान्ति, लालसा और आनन्द भक्त के हृदय में उदय होती रहती हैं। वह कभी तो ज़ोर से यह चिल्लाता है "अय भगवान् ! मेरे प्राण वल्लभ मुझे दर्शन दो। ओ मेरी आत्मा की आत्मा, मेरे मन के मन और जगत् के मित्र भगवान् कृष्ण ! कृष्ण ! ओ वन्शी वाले, वंशी विहारी, वृन्दावन बिहारी, अय दयालु, रक्षक, दीनबन्धु, मेरे हृदय के स्वामी, मेरी आंख के तारे मैं तुम को देखने में कब समर्थ हूंगा।" श्रुति का ढंढोरा है जो ब्रह्म को जान जाता है वह मृत्यु को तर जाता है। इसके अतिरिक्त मोक्ष का और कोई साधन नहीं है। जिसने ब्रह्म को जान लिया उसने मनुष्य जीवन को सफल कर लिया। ब्रह्मज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। श्रुति बल पूर्वक कहती है कि जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है उसका जन्म नहीं होता, उसका जन्म नहीं होता।

६२७. वेदांग संख्या में ६ हैं। शिक्षा उच्चारण और मात्राओं की विद्या २ कल्प रीति रिवाज की विद्या ३ व्याकरण ग्रामर, ४ निरुक्त वेद का कोष, ५ छन्द और ६ ज्योतिष।

६२८. मोक्ष के द्वार पर चार सन्तरी हैं। शान्ति, विचार, सन्तोष और सत्संग। जो मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं उनको चाहिए इन चारों से मित्रता करें। यदि मनुष्य एक से भी मित्रता करले तो औरों से आप ही हो सकती है।

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्त स्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥

६२९. हे अर्जुन ! असत् वस्तु का तो अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है, इस प्रकार इन दोनों का ही तत्व ज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है। इस श्लोक के विचार से जिज्ञासु के चित्त में विवेक उत्पन्न होता है। इस श्लोक के बार २ उच्चारण करने से संसार के अनित्यत्व का विचार दृढ़ हो जाता है।

६३०. जिसका आदि में अभाव था और अन्त में भी अभाव हो जावेगा उसका वर्तमान में भी अभाव ही समझना चाहिए। घट का वास्तव में अस्तित्व नहीं है कारण वह मिट्टी से पृथक् नहीं है। प्रत्येक कार्य असत्य है क्योंकि वह अपने कारण से पृथक् नहीं है। प्रत्येक कार्य जैसे घट, पट मिथ्या हैं क्योंकि अपनी बनावट से पहले भी न थे और नष्ट होने पर भी इनका अस्तित्व नहीं रहेगा। न घट पहले था और न पीछे रहेगा। इसी प्रकार यह शरीर न आदि में था और न अन्त में रहेगा। यह सब कुछ आत्मा ही है।

६३१. योग समाधि में योगाग्नि की ज्वाला नाभि से उठ कर शिर तक जाती है और ब्रह्मरन्ध्र में जो अमृत है उसको पिघलाती है और अमृत एक २ बून्द करके मूल रन्ध्र में से कण्ठ कूप में पड़ता रहता है और योगी इसको प्रसन्नता और आनन्द में पान करता है।

६३२. जिस प्रकार कपूर अग्नि पर पड़कर द्रवीभूत हो जाता है इसी प्रकार ज्ञानी का चित्त ब्रह्म में लय हो कर द्रवीभूत हो जाता है।

१३३. जिस प्रकार एक कुटिला नारी का चित्त घर के काम काज करते हुए भी अपने प्रेमी में लगा रहता है इसी प्रकार संसार का व्यवहार करते हुए भी ज्ञानी का चित्त ब्रह्म में लगा रहता है।

१३४. यद्यपि जले हुए कपड़े में तहें वैसे ही प्रतीत होती हैं परन्तु वह किसी काम नहीं आ सकता इसी प्रकार ज्ञानी, जिसने अपने मन को ज्ञान की अग्नि में भस्म कर दिया है और जिसमें कर्तृत्व बुद्धि का अभाव हो गया है कर्म्म करता हुआ उसमें लिप्तायमान नहीं होता।

१३५. आचार धर्म्म का अत्यन्तावश्यक भाग है। धार्मिक जीवन को उच्च बनाने के लिए ऋषि मुनियों ने प्राचीन काल में आचार नियत किए थे। जाति कर्म्म आदि से लेकर ४० संस्कार बड़े महत्व के हैं इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

१३६. याज्ञवल्क्य ने कहा है "जिसको शास्त्र का ज्ञान है, जिसने क्रोध जीत लिया है, जो सत्य भाषण करता है, जो शुभ कर्मों में लगा हुआ है, जो माता पिता और आचार्य की सेवा करता है, जो सदाचारी है वह योग के रहस्य जानने का अधिकारी है।

१३७. जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो शान्त है, जो मुमुक्षु है, जो दोष रहित है, जो पक्षपात रहित है, जो उत्साही है, सात्विक वृत्ति वाला है, काम संकल्पों से रहित है यम और नियम का पालन करने वाला है, जो सर्व संग त्यागी है, कर्तव्य परायण है, ऐसा मनुष्य योग के रहस्य जानने का अधिकारी है।

१३८. शून्य का कुछ मूल्य नहीं है परन्तु शून्य के पहले एक लगा दिया जावे तो उसका मूल्य बढ़ जाता है इसी प्रकार परमात्मा का भजन किए बिना मनुष्य जीवन का कुछ मूल्य नहीं है चाहे धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र और पशु कितने भी होवें।

१३९. वर्षा ऋतु में रात्री के समय सब बादल एक विशेष ढंग से एकत्रित हो जाते हैं और अच्छी वर्षा होने लगती है। यह प्रकृति है। इसी प्रकार योगी दिन में एक बार या तीन दिन में एक बार समाधिस्थ हो जाता है। स्वामी रामकृष्ण परम हंस का ऐसा ही अनुभव था। वह सड़क पर चलते चलते समाधिस्थ हो जाते थे और उनके चचा उनको अपने कन्धों पर उठाकर लेजाते थे। जो नित्य प्रति ध्यान लगाने का अभ्यास करते हैं उनका ध्यान उस अवसर पर स्वतः ही लग जाता है।

१४०. माया और अविद्या इन दोनों का कभी २ एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है; यद्यपि माया ईश्वर की उपाधि या उसका कारण शरीर है और अविद्या जीव की उपाधि है। माया ईश्वर के आधीन है और जीव अविद्या का गुलाम हो गया है। काम, लोभ, मन, शरीर, इन्द्रियें और प्राण यह अविद्या के कार्य हैं। ज्ञान से अविद्या और उसके कार्यों का नाश हो जाता है।

१४१. अपने आप तो कोई हानि नहीं पहुंचाता क्योंकि यह सब का आश्रय है। तुमको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता क्योंकि तुम आत्मा हो। यह मन ही है जिसको दुःख होता है। तुम तो अदृश्य हो।

१४२. जिज्ञासु में जो त्रुटियां हैं वह ध्यान, जप और निष्काम कर्म्म द्वारा दूर हो जाती हैं। चिन्ता मत करो। आत्मा निरंजन है। मेरे पुत्र तुम निरंजन हो। इसी विचार पर दृढ़ रहो। तुम्हारे दोष दूर हो जावेंगे। यह साधन का मण्डन रूप ढंग है, इससे ज्ञान की वृद्धि होती है और मल का नाश होता है। यह वेदान्त रूपी साधन है। शक्ति, आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता पवित्रता और अमरत्व यह तुम्हारे स्वाभाविक गुण हैं। इन पर दृढ़ रहो और अनुभव करो।

भक्त की प्रार्थना

(ले० श्री शोभाराम पेरुसेवक

१

तुम हो करुणासिन्धु, अनुग्रह इच्छुक मैं हूं।
हो दानिन शिर मौर, प्रभो तुम भिक्षुक मैं हूं॥
हो तुम शान्ति समुद्र, चिरस्थिति शान्ति मुझे दो।
जैसे तुम निर्भ्रान्त, वही निर्भ्रान्ति मुझे दो॥
तुम ईश्वर मैं जीव, हो व्यापक, परिच्छिन्न हूं।
तुम अंशी मैं अंश फिर, क्यों मैं तुम से भिन्न हूं॥

२

तुम हो सिंधु अगाध, अमित, मैं कण हूं।
तुम हो अगणित कल्प, उन्हीं का मैं इक क्षण हूं॥
तुम प्रेरक, मैं प्रेर्य, दृश्य मैं द्रष्टा तुम हो।
तुम कारण मैं कार्य, सृष्टि मैं स्रष्टा तुम हो॥
उडुगण हूं मैं, व्योम तुम, आश्रित हूं, आधेय हो।
ज्ञाता हूं मैं ज्ञेय तुम, ध्याता हूं मैं ध्येय हो॥

३

स्वामी हो, मैं दास, प्राप्य तुम प्रापक मैं हूं।
कर्त्ता हो मैं कर्म प्राप्य तुम प्रापक मैं हूं॥
मैं परवश तुम स्ववश, बद्ध मैं मुक्त तुम्हीं हो।
अज्ञानी मैं नित्य ज्ञान, संयुक्त तुम्हीं हो॥
मेरे चित्त चकोर हित, तुम अकलंकी इन्दु हो॥
चित्त चातक के हेतु तुम, निर्मल वारिद बिन्दु हो॥

४

तुम रवि मैं राजीव, तुम्हीं से खिलने वाला।
मुझे पूर्ण कल्यान, तुम्हीं से मिलने वाला॥
मैं तेरे आधीन मीन, तू सुधा सरोवर।
मैं हूं मधुकर लुब्ध, नाथ तू कंज मनोहर
आशा पूर्ण प्रभात तुम, मैं अनुरागी को कहूं।
नित्य प्रकाशक नाथ तुम, मैं तेरा आलोक हूं॥

पुराण का वेदत्व प्रतिपादन

[ले० आचार्य मदन मोहन गोस्वामी वै० दर्शन तीर्थ भागवत रत्न]

वर्तमान समय के बहुत से लोगों का कहना है कि, "पुराण" इतिहास में जो कुछ वर्णन किया गया है वह केवल कहानी मात्र है, अतः उनकी उक्तियां प्रमाणित नहीं मानी जा सकतीं। उन लोगों को यह नहीं मालुम है, कि पुराण, इतिहास की निन्दा से हम वेद निन्दक भी हो जाते हैं। वेद और पुराण का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, इस तत्व को हृदय गमं करने पर उपर्युक्त वाक्य नहीं कहे जा सकते। आज इसी 'तत्व' पर विचार करना है।

तत्व विचार में तीन बातों की आवश्यकता होती है। एक सम्बन्ध, दूसरा अभिधेय और तीसरा प्रयोजन। वेद प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण भगवान ही सम्बन्ध पद वाच्य हैं। श्रीकृष्ण भजन अभिधेय है और श्रीकृष्ण प्रेम ही अभिप्राय (प्रयोजन) है। इसमें अभिधेय और प्रयोजन निरूपण के लिए सब से प्रथम प्रमाण की आवश्यकता होती है। प्रत्यक्षादि लौकिक प्रमाण सब दोष युक्त हैं। क्यों कि मनुष्य स्वभाव से ही भ्रमादि दोषों से परिपूर्ण हैं। इसलिए अलौकिक और अचिन्त स्वभाव परमार्थ वस्तु को स्पर्श करने की योग्यता मनुष्य में नहीं है। अतः सिद्ध होता है कि, लौकिक बुद्धि और इन्द्रियादि से परमार्थभूत वस्तु कदापि प्रमाणित नहीं हो सकती। जो लोक परम्परा से अनादि सिद्ध है, जो सर्व लौकिक अलौकिक ज्ञान का मूल कारण है, जो अप्राकृत वचन स्वरूप है वह वेद ही हम लोगों के सर्वातीत, सर्वाश्रय, अचिन्त्य तत्व के निर्णय में एक मात्र प्रमाण माना जाता है।

इस बात को हम लोग ही स्वीकार करते हैं ऐसा नहीं है। श्री व्यासादि महर्षियों ने भी "तर्का प्रतिष्ठानात् शास्त्रयोनित्वात्, श्रुतेश्च शब्द मूल त्वात्"। आदि वाक्यों से स्वीकार किया है। वेद का लक्षण यह है। "वेदो नामालौकिकः शब्द" अलौकिक शब्द को वेद कहते हैं।

आज कल वेद का प्रचार वास्तविक रूप में न होने के बराबर है, क्योंकि, उधर वेद का अर्थ जैसा निगूढ़ है, इधर मनुष्यों की मेधा शक्ति की हीनता में भी कमी नहीं है। इन ही कारणों से वेद का तत्व जानना अत्यन्त कठिन है और इन ही कारणों से वेदाध्यायन और अध्यापन कार्य से लोग उदासीन हो गये हैं। यद्यपि गौतमादि मुनियों ने वेद तत्व का निरूपण किया है, परन्तु उनमें भी परस्पर मत भेद देखने में आता है। अतः वेदार्थ का निर्णय करना सामान्य बात नहीं है। इस कठिन स्थिति में इतिहास और पुराणों का अवलम्बन करना ही उचित साधन है। 'श्रीचैतन्य चरितामृत में भी लिखा है'—:

वेदरे निगूढ अर्थ बूझने ना जाय।
पुराण वाक्ये सेई अर्थ करये निश्चय ॥

इसका भाव यही है कि 'वेद का निगूढ़ अर्थ समझ में नहीं आता. पुराण के वाक्य से उस अर्थ का निश्चय किया जाता है।' वेद को श्रीभगवान् का साक्षात् स्वरूप मानना चाहिये। इसीसे उसका तत्व समझना सहज नहीं है। अब प्रश्न यह होगा कि, फिर ऐसे निगूढ़ तत्व के समझने का पथ कौनसा है? इसका उत्तर महाभारत और मनु संहिता में स्पष्ट है। यथा–

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

इतिहास और पुराणों की सहायता से ही वेद का अर्थ मालूम किया जा सकता है। पुराण और वेद के अर्थ का सामञ्जस्य करने से भली भान्ति मालूम होता है कि, वेद जिस तत्व का संक्षेप से वर्णन करते हैं, इतिहास और पुराण उसी के अर्थ को स्पष्ट रीति से प्रकाश कर देते हैं। पुराण के लक्षण पर दृष्टि करने से निश्चय होता है। यथा–'पूरणात् पुराणमिति' वेद के अर्थ को पूर्ण करने से इसका नाम पुराण है। अतः सिद्ध होता है कि, वेद भिन्न वेद का पूर्ण होना सम्भव नहीं है। जैसे सुवर्ण की पूर्ति सुवर्ण से ही हो सकती है। इसी तरह वेद की पूर्ति भी वेद ही से होगी। जब वेदार्थ की पूर्ति पुराणों से सिद्ध है। तब पुराण के वेदत्व होने में कोई सन्देह नहीं है।

वेद अपौरुषेय हैं। इसी तरह सिद्धान्त में इतिहास-पुराण भी अपौरुषेय हैं, क्योंकि वेद जो कुछ प्रतिपादन करते हैं, इतिहास पुराण भी उसी का प्रतिपादन करते हैं। वेद और पुराणों की इस अपौरुषेयता के सम्बन्ध में माध्यन्दिनी श्रुति में प्रमाण है।

एवं वा अरेऽस्य महतोभूतस्य निःश्वसित मेतद् यद्।
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसइतिहास पुराणम्।

इसका तात्पर्य यह है कि, हे शिष्य! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद, आङ्गिरस एवं इतिहास पुराण यह सब भगवान के श्वास से उत्पन्न हुए हैं, इसीसे पुराण भी वेदस्वरूप हैं। इन्हीं हेतुओं से यह वाक्य भी लिखा गया है कि–

इतिहास पुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरम्।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥

सामवेद की शाखा के छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है:–

ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम्।
इतिहासं पुराणं च पञ्चमं वेदानां वेदम्॥

इस वाक्य से भी पुराण का वेदत्व सिद्ध होता है।

तुलसी कृत रामायण के श्रीरामचरित्र की ऐतिहासिकता में सन्देह।

[लेखक महावीरप्रसाद श्री बजरंगबली श्री वास्तव]

किन्हीं २ सज्जनों का विचार है कि गोस्वामी तुलसीदासजी कृत श्रीराम चरित मानस ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, किंतु इस ग्रन्थ में कवि ने अपने अन्तःकरण के अनुभव से कथा प्रसंग के रूप में

आदर्श चरित्रों का चित्रण विविध पात्रों द्वारा कराया है। तात्पर्य यह कि तुलसी कृत रामायण वास्तव में ऐतिहासिक ग्रन्थ न होकर चरित्र चित्रण का ग्रंथ है। और इस प्रकार अनुमान की पुष्टि के लिए रामायण की ऐतिहासिकता पर कोई २ शंकायें भी प्रकट करते हैं। जैसे रावण के दूतों ने भगवान श्रीराम की सेवा का वर्णन करते हुए रावण के प्रति कहा है:-

अस मैं अपन सुना दसकंधर।
पदम अठारह यूथप बन्दर॥

पर ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर आज समस्त भारतवर्ष की जन संख्या तेतीस करोड़ के लगभग कही जाती है। ऐसी दशा में लंका के एक छोटे से द्वीप के युद्ध में एक ओर की सेना के यूथप मात्र की अठारह पद्म की संख्या ऐतिहासिक दृष्टि से कैसे ठीक मानी जा सकती है।

इस प्रकार के सन्देहों के आधार पर ही गो स्वामी तुलसीदासजी कृत रामायण की ऐतिहासिकता पर सन्देह उठाया जाता है।

पर यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि केवल उक्त प्रकार के सन्देहों के आधार पर ग्रन्थ की ऐतिहासिकता में सन्देह करके कुछ कल्पना कर लेने का साहस उस दशा में उचित हो सकता है जब कि ग्रन्थकार ने स्पष्ट शब्दों में अपने ग्रंथ को स्वयं ऐतिहासिक न सूचित किया हो। परन्तु जब ग्रन्थकार ने स्वयं ही स्पष्ट शब्दों में अपने ग्रन्थ को ऐतिहासिक सूचित कर दिया हो। तब केवल अपने सन्देहों के आधार पर ग्रन्थ को ऐतिहासिक न मानना; यह कभी भी उचित न होगा किंतु ऐसी दशा में जहाँ तक हो सके अपनी शंकाओं के निवृत्त करने का ही यथा शक्ति उपाय करना चाहिये।

श्रीराम चरित मानस में ऐतिहासिक रूप से किसी कल्प के श्रीरामावतार का चरित गान किया गया है। या एक कल्पित उपन्यास के रूप में आदर्श चरित्रों का चित्रण मात्र किया गया है। इसका उत्तर तो रामायण में ग्रन्थकार ने ही बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। बालकाण्ड में संवाद परम्परा के सहित अपने कहे हुये श्रीरामचरित की ऐतिहासिकता को खुले शब्दों में स्पष्ट किया है यथा:-

संवाद परम्परा

बालकाण्ड में कथा प्रसंग को प्रारम्भ करते हुये गो स्वामीजी कहते हैं:-

याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई।
भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई॥
कहिहौं सोई संवाद बखानी।
सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥

फिर उस कथा की रचना कैसे हुई? और याज्ञवल्क्यजी ने कहां से प्राप्त की? इस विषय में भी:-

शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ शिव काग भुशुण्डिहि दीन्हा।
राम भक्ति अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन याज्ञवल्क्य मुनि पावा।
तिन्ह मुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

पुनः याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवाद के अन्तर्गत शिव पार्वती संवाद का ही विस्तृत वर्णन होगा। यह भी प्रकट करते हैं यथा:-

कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी।
जेहि विधि शंकर कहा बखानी॥

सो सब हेतु कहब मैं गाई।
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥

फिर श्री रामचरित मानस की कथा अन्य प्रसिद्ध रामायणों की कथा से बहुत कुछ भिन्नता व विलक्षणता भी रखती है यह भी ग्रन्थकार स्वयं ही सूचित किये देते हैं यथाः-

जेहि यह कथा सुनी नहं होई।
जनि आचर्य करै सुनि कोई ॥

फिर इस भिन्नता में कारण क्या है? इस के लिये भी गो स्वामी जी ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है यथाः-

नाना भांति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा।
कल्प भेद हरि चरित सुहाये।
भांति अनेक मुनीशन गाये ॥

तात्पर्य यह कि कथा में कल्प का भेद होने से ही रामायणों में कथा में परस्पर अनेक स्थलों पर भिन्नता पाई जाती है।

इससे ग्रन्थकार के शब्दों से ही यह बात सूचित हो जाती है कि तुलसीकृतरामायण का श्री राम चरित्र भी एक कल्प का स्वतन्त्र चरित है।

अतएव तुलसी कृत रामायण की कथा में अन्य रामायणों से कहीं २ पर कथा में भिन्नता होने का मुख्य कारण कल्प भेद के अतिरिक्त अपनी कल्पना से कुछ और निश्चित करना भी ठीक नहीं प्रतीत होता।

इस प्रकार जब ग्रन्थकार के शब्दों से ही श्री राम चरित मानस की ऐतिहासिकता स्पष्ट है। तो फिर केवल छोटी २ शंकाओं के आधार पर बिना विचारे एक दम ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर ही सन्देह करने लगना कैसे संगत हो सकता है। अब रही शंकाओं की बात, सो विचार करने पर शंकाओं की निवृत्ति भी हो सकता है। प्रथम तो उस समय के देश काल तथा भूगोल सम्बन्धि बातों का आज कल के देश काल तथा भूगोल से सर्वथा मेल कर के शंकायें उठाना ही ठीक नहीं प्रतीत होता। फिर शंकाओं के उठाते समय उस स्थल पर भी देखना चाहिये कि उस स्थल पर किसी प्रकार की नीति या अतिशयोक्ति का अवसर तो नहीं है? अथवा कवि की कथन शैली का कोई विशेष चमत्कार तो नहीं है? जैसे उदाहरण रूप से इस लेख में प्रथम प्रकट की हुई शंका पर हो विचार किया जा सकता है। रावण के प्रति उसके दूत के

'अस मैं श्रवण सुना दश कंधर।
पदम अठारह यूथप बन्दर ॥

यह वचन किस ढंग के हैं। प्रसंग पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह वचन दूत ने श्री रामदल का उत्कर्ष वर्णन करने में कहा है। और उसका अभिप्राय यह है कि किसी तरह रावण भयभीत होकर भगवान् की शरण में प्राप्त होजाय तो इसका कल्याण हो। दूत को इस समय अपने वचन के अक्षरशः सत्य होने की न पड़ी थी, किंतु रावण को किसी प्रकार भयभीत कर देना उसका मुख्य अभिप्राय था। और इसी से अपने वचन के साथ उसने "अस मैं श्रवन सुना" शब्द प्रयोग किया है। भाव यह है कि मैं तो गिनने या अन्दाज करने में असमर्थ ही रहा, पर कानों में ऐसा सुना है।

इस प्रकार उस प्रसंग में और भी हनुमान जी के लिये दूत ने कहा है:—

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा।
सकल कपिन्ह मंह तेहि बल थोरा ॥

अब सज्जन विचार करें कि क्या वास्तव में

हनुमान जी के विषय में दूत का इस प्रकार कहना ... हय और यथार्थ है ?

इस प्रकार प्रसंग पर विचार करने से ... एक प्रकार की शंकाओं के उठाने का अवसर ही ... नहीं रहता सारांश यह कि जब ग्रन्थकार के शब्दों से ही सम्वाद परंपरा सहित ग्रन्थ की ऐतिहासिकता स्पष्ट है, (जैसा कि इस लेख में प्रथम प्रमाण सहित स्पष्ट किया गया है) तब छोटी २ शंकाओं के आधार पर ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर ही सन्देह कर बैठना बहुत ही अनुचित है।

जप

(ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी म० भ० आश्रम)

मनुष्य अपने जीवन में न मालुम कितने अच्छे और कितने बुरे कर्म करता है। शास्त्रों में जहां अच्छे कर्मों की प्रशंसा की है वहां बुरे कर्मों की निन्दा भी की है परन्तु मनुष्य अपने सहज स्वभाव से अच्छे बुरे दोनों ही कर्मों में प्रवृत्त होता है। बुरे कर्मों के प्रायश्चित्त भी नियत किये हुये हैं। यदि प्रायश्चित्त से मनुष्य अपने किये हुये असत्कर्मों को नष्ट न करे तो अवश्य उसको उन कर्मों का पाप फल भोगना पड़ेगा। यह शास्त्र का निर्णय है। यथा:-

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्म कोटिशतैरपि॥

जब किये हुये कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है तो विचारवान् को चाहिये कि पहले ही दुष्कर्म न करे यदि किसी कारण बन ही गया तो उसका फल रूप प्रायश्चित्त पहले ही करले।

बन्धन के हेतु भूतकर्म कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकार के होते हैं। काया से होने वाले कर्म कायिक कहे जाते हैं। शरीर के दुष्कर्मों का फल शरीर ही से भोगना पड़ता है, वाचिक का वाणी से और मानसिक का मन से भोगना पड़ता है:-

'मानसं मनसैवायमुपभुंक्ते शुभाऽशुभम्।'

मानसिक पापों का प्रायश्चित्त है-जप। भगवान् के पावन नाम का जप या किसी परम मन्त्र का जप मनुष्य के सब पापों को नष्ट कर देता है। जप भी अनेकों मन्त्रों का होता है परन्तु परम जप सब से श्रेष्ठ जप गायत्री का ही शास्त्रों में माना है। गायत्री के जप की विधी निम्न प्रकार से है यथा:-

ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपोऽयं उदाहृतः॥

प्रथम ओंकार का उच्चारण करके फिर तीन व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः) को बोले, फिर गायत्री तथा अन्त में ओं को बोल कर समाप्त करे। इसे जप कहते हैं। जितने भी जप हैं सब से बड़ा जप गायत्री का ही है। इससे बड़ा जप नहीं है।

गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशिनी ।
न गायत्र्याः परं जाप्य मेतद्विज्ञान मुत्तमम् ॥

सारे वेदों की माता गायत्री है इसलिये वेद में कोई मन्त्र गायत्री से बड़ा नहीं, गायत्री पापों को नष्ट करने वाली है। गायत्री से परे कोई जप नहीं, यही उत्तम विज्ञान है। गायत्री के जप से मनुष्य के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

गायत्री जपकृद्भक्त्या सर्व पापैः प्रमुच्यते ।

भक्ति से गायत्री का जप करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है। जप भी कई प्रकार का होता है।

विधि यज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशु स्याच्छतगुणा सहस्रो मानसो स्मृतः ॥

जपयज्ञ विधि यज्ञ से दश गुणा अधिक फलदायक होता है। वही यदि धीमी आवाज से किया जाय तो सौगुणा अधिक फलदायक होता है। और मन २ में किया हुवा हजार गुणा उत्तम होता है।

ये पाक यज्ञाश्चत्वारो विधि यज्ञ समन्विता ।
सर्वे ते जप यज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

चारों पाक यज्ञ, विधि यज्ञों के समेत भी सब मिल कर जप यज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते। शास्त्रों में जप का माहात्म्य बहुत वर्णन किया है। सायं प्रातःकाल की सन्ध्या के विषय में मनु भगवान् कहते हैं।

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेन् सावित्री मकदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीतः सम्यगृक्षविभावनात् ॥

अर्थात् पहली संन्ध्या में जप करता हुवा सूर्य के दर्शन होने तक खड़ा रहे और पिछली में भली भान्ति तारों के स्पष्ट दीखने तक बैठ कर जाप करे।

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवा कृतम् ॥

पहली सन्ध्या में खड़ा हो कर जप करता हुवा रात्रि के पाप को दूर करता है और पिछली में बैठ कर जप करता हुवा दिन के पापों को नष्ट करता है।

शास्त्रों में सन्ध्या के समय जप करने का विधान लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि पहले सब विद्वान् गायत्री का ही जप किया करते थे।

बहुधा लोग सन्ध्या और गायत्री में भेद बुद्धि रखते हैं परन्तु शास्त्र में कहा है:-

या सन्ध्या सैव गायत्री द्विधामूर्त्यवस्थिता ।
सन्ध्या उपासिता येन विष्णु स्तेन उपासितः ॥

जो सन्ध्या है वही गायत्री है नाम से दो रूप हैं जिसने सन्ध्या की उपासना करली उसने विष्णु की ही उपासना करली।

बहुत से जिज्ञासु यह आशंका करते हैं कि गायत्री का ही जप क्यों किया जाय और भी तो भगवान् के अनेकों नाम हैं? गायत्री तो यज्ञोपवीतधारी द्विज को ही जपने का अधिकार है? इस शंका के समाधान के लिये गायत्री मंत्र की और मन्त्रों व नामों से विशेषता दिखलाते हैं।

सब से प्रथम बात यह है, कि भगवान की भक्ति में या आराधना में तीन बात होनी आवश्यक हैं। १ स्तुति २ उपासना और ३ प्रार्थना। प्रथम भगवान् के नाम व गुणों की स्तुति करना, फिर स्तुति करते २ उनके गुणों में ध्यानमग्न हो जाना, तन्मय हो जाना। यह उपासना है। फिर उपासना की त्रुटि को पूर्ण करने के लिये प्रार्थना करना। यह ईश्वराराधन का क्रम है। अब यह विचारना है कि ये तीनों बातें किसी मन्त्र में हैं या नहीं। खूब विचारने पर ये तीनों बातें गायत्री मन्त्र में ही दृष्टि गोचर होती हैं। वेदों में इस मन्त्र

के सिवाय ये तीन विषय और किसी में मिलना असम्भव है। दूसरे गायत्री में नौ नामों से स्तुति की गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि संख्या ९ तक ही होती है। आगे १ पर शून्य रखने से १० बनता है। अतः नौ नामों से असंख्य नामों का ग्रहण हो जाता है। इससे भी गायत्री की सब से अधिक महत्ता प्रकट होती है। रही बात यह कि गायत्री सब को जपनी चाहिये या नहीं। इस पर प्रथम तो यही विचारना चाहिये कि जो ईश्वर न्यायकारी सब की रक्षा करने वाला सब का माता पिता है तो फिर उसकी स्तुति, उपासना, प्रार्थना सब को करने का अधिकार क्यों न हो। दूसरे उसकी आज्ञा रूप वेद है जिसमें भगवान आज्ञा करते हैं:-

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

तथाचः-

सत्यमहं गभीरकाव्येन सर्वं जातेनास्मिजातवेदा।
न मे दासो न मे आर्यो महीत्वा व्रते मीमाय यदहं धरिष्ये॥

इन मन्त्रों से स्पष्ट होता है कि भगवान् कि वाणी जो वेद है उसका सब को पढ़ने का अधिकार है। और उसकी आज्ञा का जो पालन करेगा वह उसी का उद्धार करेगा। फिर यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक मनुष्य भगवान् की प्रार्थना उपासना, स्तुतिमय मन्त्रों को जपें।

जप करने से अनेकों महापुरुषों ने सिद्धि प्राप्त की है। किसी भक्त ने एक सन्त से प्रश्न किया कि महाराज भजन में मन नहीं लगता। सन्त ने कहा-भाई तुम भजन करना चाहते नहीं मन इसी लिये नहीं लगता। हमको जब भजन का शौक लगा था तो घरकों के सो जाने पर रात्रि को उठ कर १० बजे से ४ बजे तक शौचादि करके गायत्री का जप किया करते और चार बजे शौच स्नान से निवृत्त हो कर फिर १२ बजे तक जप किया करते। तब भजन में मन लगने लगा। सन्त की बात सुन कर भक्त दंग रह गया। वास्तव में आश्चर्य की बात है भी। भक्त हरिदास जी तीन लाख जप करके भोजन किया करते थे। इसी प्रकार जप करते २ धीरे २ धारणा पक्की हो जाने पर स्वयं ही जप होने लगता है। फिर प्रतिश्वास जप होता है और मनुष्य के मल विक्षेप सब नष्ट हो कर अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। फिर ब्रह्म की ज्योति स्पष्ट दृष्टि पड़ती है। बस फिर जीवन्मुक्त हो जाता है। परम आनन्द मनाता है। "एषोऽस्य परम आनन्दः, एतावत्य परमा सम्पत्" यही इसकी परम अवधि है। यही परम सम्पत्ति है।

भक्तकी भावना।

[लेखक-लक्ष्मी प्रसाद जी 'रसा']

चाह नहीं पंचाग्नि तपूं-या तन पर भस्म लगाऊं मैं॥
सिर जटा रखा कर सिर पै, जग से पग पुजवाऊं मैं॥
चाह नहीं है मठाधीश-या संत महंत कहाऊं मैं॥
चाह नहीं तीरथ प्रयाग कर, वैरागी बन्हाऊं मैं॥
चाह यही बस ? हरि चरणों से लगा रहै नित चित मेरा॥
'लक्ष्मी' उनकी इच्छा से हो, जिसमें हित-अनहित मेरा॥

गो० श्रामदास जी

(ले० श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय)

भूमण्डल में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जिसमें ध्रुव, प्रहलाद आदि भगवद्भक्तों ने जन्म ग्रहण किया था। जब विक्रम की दशवीं शताब्दी से समय देश के प्रतिकूल हो गया, तब जनता पर विधर्मियों द्वारा नानाप्रकार से आक्रमण होने लगे, प्रजा जबर्दस्ती विधर्मी बनाई जाने लगी। उनके सदाचार पर अन्याय का वज्र वर्षण होने लगा। धर्म पर चलने की डींग मारने वाला नृपति मण्डल स्वयं धर्म पर पदाघात करने लगा। राज्य लोलुप अदूर दर्शी नरेन्द्रगण परस्पर लड़ भिड़कर निर्बलता के जाल में फंस गये। प्रजा निःसहाय हो गयी, वह किसकी शरण ले! भूख, प्यास, रोग, अपमान आदि में पड़कर वह थपेड़ों के आघात से विवश होने लगी। विदेशियों की कूटनीति रूपी आवर्त में चकरा गयी। विषम रूपी ग्राह उसे धीरे २ ग्रसने लगा। भारत में हाहाकार मच गया, जिसका आर्तनाद वायु-मण्डल में गूंज उठा।

ऐसे दुर्दिन में ऐसी मृतप्राय अवस्था में उनका सहायक कोई नहीं देख पड़ा यदि कोई सहायक हुआ तो वही ध्रुव प्रहलाद आदि के पथानुयायी दयासागर भक्तगण। जिस समय भारत में अव्यवस्था का साम्राज्य फैला हुआ था, उस समय सूरदास तुलसीदास रामदास प्रभृति भगवान् की विभूतियां उस विपत्ति-नद में कूद पड़ी और डूबती हुई जनता की रक्षा की। उन्होंने जनता के हृदय को अपने निर्मल चरित्र और उपदेशों से स्वच्छ करके उसमें धर्मनीति राजनीति और समाजनीति आदि रंगों को भक्ति का मसाला देकर ऐसा रंग चढ़ा दिया जो आज तक ज्यों का त्यों चमक रहा है।

इसी पवित्र, सुन्दर भक्त-माला की एक पवित्र मणि हमारे चरित्र नायक गोस्वामी श्रामदास हैं। आपका जन्म जिला जौनपुर के अमायं नामक गांव में हुआ था। यह गांव आजकल जन-हीन है, किन्तु बस्ती का भग्नावशेष चिह्न विद्यमान है। सुनने में आता है कि गो० श्रामदास का बनवाया हुआ एक कुआं अब तक वहां मौजूद है। आप सरयूपारीण ब्राह्मणों में पीड़ो के तिवारी थे। इनका वंश-धर अब कोई नहीं है। इनके माता पिता के नाम का पता बहुत खोज करने पर भी नहीं लग सका। सुना जाता है कि जब इनकी बाल्यावस्था थी, उसी समय इनके पिता का शरीर पात हो गया था। माता द्वारा इनका लालन पालन हुआ। गो० श्रामदास की जीवनी उसी प्रकार चमत्कारिक घटनाओं से पूर्ण है, जिस प्रकार की घटनायें सभी आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों में पाई जाती हैं।

आपके विद्याध्ययन के सम्बन्ध में यह बेसिल

है कि जब इनकी माता ने इन्हें गुरु जी के पास पढ़ने के लिये भेजा, तब आप पढ़ने की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे, बल्कि अपने सहपाठियों को साथ में लेकर राम, कृष्ण, हनुमान, आदि की मूर्ति बनाकर उनके पूजन का खेल किया करते थे। पढ़ने में मन नहीं लगाने के कारण गुरु जी प्रायः अप्रसन्न रहते। एक दिन इनकी माता ने आकर गुरुजी से पूछाः- "महाराज, लड़िकवा के किछु आवइ लाग की नाहीं?" इसके उत्तर में गुरुजी ने कहाः-"तुमारे 'लड़िकवा' की तो यही दशा है कि 'हरहा के साथ कपिला का नाश" वह स्वयं तो कुछ पढ़ता नहीं-दूसरे लड़कों को भी बिगाड़ रहा है" यह सुन कर माता ने घर आकर लड़के को डाटना शुरू किया। बालकने माता से कहा कि गुरु जी यह कैसे कहते हैं कि मुझे कुछ नहीं आता, उन्होंने तो मुझे जितना पढ़ाना चाहिये था, वह सब पढ़ा दिया है और वह मुझे अच्छी तरह से कण्ठ है। इस तरह आपस में विवाद करते माता और पुत्र पुनः गुरुजी के पास पहुंचे। माता ने गुरु जी से कहाः-"महाराज, लड़िकवा कहत बलिक गुरु जी हमें सब पढ़ाइ दिहेन, औ ऊ सब हमके इयाद बा" यह सुन कर गुरुदेव कुपित हुए और कतिपय कठिन ग्रन्थ लाकर बालक के हाथ में दिया और उससे कहा यदि तू विद्या दिग्गज पण्डित बन गया है तो इन पुस्तकों को पढ़ कर मुझे इनका अर्थ समझादे। बालकने गुरु की आज्ञानुसार कार्य किया। जिसे देख गुरुदेव आश्चर्यचकित हो गये और उनकी माता से कहाः- देवी, आपके पुत्र को पढ़ाने की शक्ति मुझ में नहीं है यह तो कोई महान आत्मा है, और इसकी विद्या पूर्व संस्कारिक है।

अब बालक पढ़ना छोड़ घर रहने लगा। दरिद्रावस्था थी। कभी २ चूल्हे में आग तक जलने की नौबत नहीं आती थी। जिससे दुःखी हो कर इनकी माता एक ब्राह्मण के घर गयीं जिसने इनके पति से कुछ ऋण लिया था। उससे अपनी दयनीय दशा सुनाकर कर्ज चुकाने का अनुरोध किया। बार २ तगादा करने पर उसने एक दिन हाथ जोड़ कहा-मैं भी बहुत ही कष्ट में हूं, जिससे लाचार हूं आप का रुपया मैं दूंगा और कौड़ी २ दूंगा, किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है, जिसे स्वीकृत कीजिये वह यह कि आप मेरी कन्या का विवाह अपने पुत्र से करना स्वीकृत करलें। इससे आप यह न समझें कि मैं ऋण नहीं चुकाऊंगा बल्कि पास में द्रव्य आते ही पहले आपका ऋण-शोध करूंगा। माता ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया। इस सम्बन्ध की बात चारों ओर फैल गयी। जब विवाह की चर्चा बालक ने सुनी, तब वह अपने कुछ साथियों सहित विन्ध्याचल देवी के दर्शनार्थ घर से निकल पड़ा। देवी का दर्शन कर लौटे। विन्ध्याचल से पश्चिम करीब ४ मील पर गंगा किनारे बरजी नाम का एक गांव है। वहां लड़के आपस में खेल रहे थे। जिन्हें देख कर अपने साथियों सहित यह खड़े हो गये। आगन्तुक बालक ने इन लड़कों से कुछ बात चीत और फिर अपने साथियों से कहाः-आप लोग अपने घर जायें, मेरा पूर्व जन्म का साथी मिल गया। अब तो मैं न घर जाऊंगा और न विवाह करूंगा। माता से कह देना कि मैं अमुक स्थानमें हूं मैं गृहस्थाश्रम प्रवेश नहीं करना चाहता। हां, कभी २ आकर उनका दर्शन अवश्य किया करूंगा।

अपने साथियों को विदा कर आप लड़कों के साथ में गाँव में आये एवं पण्डित जयनाथ उपाध्याय के मकान पर ठहरे। उन्होंने अतिथि का

यथोचित सत्कार किया और उससे अपने को धन्य माना। उपाध्याय जी ने रामदास की आज्ञानुसार एक कुटी गंगापुर में बना दी, और अपने एक पुत्र को उनकी सेवा में रहने के लिये नियुक्त किया। अब आपका समय पठन पाठन और शास्त्रालोचन में व्यतीत होने लगा। अपने सौम्य स्वभाव एवं उत्तम आचरण से आपने जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। इनकी कीर्ति कौमुदी का विकाश हुआ। दूर दूर से लोग आनेलगे, जिन्हें इनके उपदेशों से तृप्ति होने लगी।

इस तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर आपने एक दिन ग्रामवासियों से कहा कि गंगाजी के तटपर एक गुफा बनायी जाय तो अच्छा हो। गाँव वालों ने आज्ञा का पालन किया। उसमें प्रवेश करते समय आपने लोगों से कहा "मैं इस गुफा में निरन्तर ४० दिन रहूंगा। बीच में मुझ से किसी प्रकार की छेड़ छाड़ न की जाय। ४१ वें दिन मुझे गुफा से बाहर निकालना। यदि मैं अज्ञानावस्था में रहूं तो मेरे शरीर पर गंगाजल का छींटा देकर ज्ञान कराना"। गांव वालों ने ठीक ४१ वें दिन गुफा से आपको निकालते समय अज्ञात व्यक्ति लिखित एक पत्र समेत आपको ऊपर लाये। जब आपको ज्ञान हुआ तब गांव वालों ने पत्र की चर्चा आपसे की और वह पत्र आपके हाथ में दे दिया। जिसे देख आप प्रेम से विह्वल हो गये और बोले-भगवती गंगाने मुझे भाषा में राम चरित वर्णन करने के लिये आदेश दिया है। मैं इस आज्ञा का पालन करूंगा। यह कह कर आप श्रीविन्ध्यक्षेत्र चले गये। वहां सं० १८१८ विक्रमीय में "श्रीरामार्णव" की रचना का प्रारम्भ किया। यह ग्रन्थ कितने दिनमें शेष हुआ, इसका निर्णय नहीं हो सका है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ भगवद्भक्तों के लिये एक रत्न है। यह अत्यन्त खेद की बात है कि अब तक यह ग्रन्थ अमुद्रित है। केवल सुन्दर काण्ड का प्रकाशन हुआ है, जिसका श्रेय पं० रामकिंकर पाण्डे हवड़ा जूट मिल-हवड़ा को है।

लौटने वाले साथियों से इनकी माता ने जब इनका सन्देशा सुना, तब पुत्र की सत्यता, दृढ़ निश्चयता का विचार करके एक मात्र पुत्र को घर बुलाने के लिये कुछ भी चेष्टा नहीं की, बल्कि भावी पुत्रवधू के पिता से जाकर सब कह सुनाई और यह भी कहा कि आप अपनी पुत्री का कहीं अन्यत्र विवाह करें। पिता ने वर ढूंढना प्रारम्भ किया। यह खबर लड़की को मिली। उसने अपनी विवाह करने में असम्मति प्रकट करते हुए कहा:- हिन्दू कन्याओं का विवाह एकबार होता है, दो बार नहीं। यह कोई बात नहीं है कि माँगमें सिन्दूर डालने पर विवाह हो? मैंने तो अपने हृदय में उन्हें स्वामी मान लिया है। अब किसी अन्य व्यक्ति के लिये मेरे मन में स्थान नहीं है। एक बात और है, यदि वे फिर कौमार ब्रत साधन करेंगे तो क्या मैं उनकी अर्द्धांगिनी हो कर उस पथ का अनुसरण नहीं करूंगी? और ऐसा ही किया।

अभी तक यह निश्चय नहीं हो सका है कि श्रीरामार्णव को आपने विन्ध्याचल में समाप्त किया या किसी अन्य स्थान में; क्योंकि आजकल उनके रहने के मुख्य दो स्थान माने जाते हैं, एक मिर्जापुर के चेतगंज मुहल्ले में है। वहां पहले बस्ती नहीं थी। आपने एक बगीचा लगाकर उस में एक मन्दिर निर्माण कर श्री हनुमान जी को प्रतिष्ठित किया। यही आप के शिष्य परम्परा

की गद्दी आज तक विद्यमान है।

थोड़ा समय व्यतीत होने पर वह हिन्दू ललना आपके दर्शनार्थ मिर्जापुर आई। आपने उसे बहुत समझाया कि तुम अपना विवाह कर लो। जिस पर उसने गम्भीरता से उत्तर दिया "जब कहें, तो कहने दीजिये, किन्तु आप ऐसा न कहिये क्योंकि आप धर्मज्ञ हैं। ईश्वर का नाम जपकर जैसे आप अपने को मुक्त करलेंगे, वैसे ही मैं आपका नाम जप कर अपने को मुक्त करूंगी। यह कह कर सजल नेत्रों से दूर ही से उसने इन्हें साष्टांग दण्डवत् करते हुए पुनः निवेदन किया कि "महाराज। मैं आपकी सेवा में केवल दर्शन करने की कामना से आई हूं। संसारी वासना के भाव लेशमात्र भी मेरे हृदय में नहीं हैं। यदि आप आज्ञा दें तो कभी२ आकर श्री चरणों का दर्शन कर लिया करूं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि जिस प्रकार सर्व साधारण के आगमन से आपके भजन पूजन में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती है, उसी प्रकार साल दो साल के उपरान्त केवल कुछ क्षण के लिये मेरे आने से आपके मार्ग में किसी प्रकार बाधा नहीं उपस्थित होगी! देवी की ऐसी दृढ़ता देख कर आप सपारिषद दंग हो गये, और उनकी प्रार्थना स्वीकृत करली।

देवीजी ने जब तक जीवित रहीं तब तक अपना जीवन नैष्ठिक रूप से व्यतीत किया। मिर्जापुर की कुटी पर जिस समय गोस्वामी श्यामदास विद्यमान थे, उसी समय निकटस्थ जहांगीराबाद नामक ग्राम में एक पहुंचे हुए महात्मा फूल भारती जी निवास करते थे। भारती जी आप का नैष्ठिक आचरण, भगवत्प्रेम, उपदेश शैली, सरल और अमायिक भाव प्रभृति सद्गुणों को देख कर हृदय से श्रद्धा करने लगे। भारती जी की आस पास के नरेशों के यहां अच्छी प्रतिष्ठा थी।

मांडानरेश के यहां एक बड़ा बाधा थी, जिससे उन्हें अनेकों कष्ट सहन करने पड़ते थे। विवश होकर वह फूल भारती के शरणापन्न हुए और उन्हें अपनी राजधानी ले गये, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। तब भारती जी की सम्मति से राजा साहब ने श्यामदास की शरण ली। राजा के निवेदन पर आप मांडा गये। उसी रात वह बाधक प्रेत श्यामदास से मिला और बोला अब मुझे निश्चय हो गया कि आपके आगमन से मुझे भागना पड़ेगा, अतएव अब मैं यहां से विदा होता हूं, किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है, उसे आप स्वीकृत करें। मेरे स्मारक स्वरूप में किले के प्रधान फाटक पर भरेठा न रखा जाय। इसकी लाज आपके हाथ है।"

आज तक मांडा के सदर फाटक पर भरेठा नहीं है।

आप कुछ दिन तक मांडा में राजा साहब के अनुरोधवश ठहर गये। उन्हीं की इच्छानुसार यहां अपनी एक गद्दी भी कायम की, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

आपकी मृत्यु सं० १८४४ वि० में हुई है जो निम्न लिखित पद्य से स्पष्ट है। जानना है कि इसकी रचना आपने मृत्यु से कुछ पहले की थी।

दस वसु सत अरु वेद २ सम्वत गुरु वासर।
पौष शुक्ल तिथि रन्ध्र मकरका उदित दिवाकर॥
तजि शरीर शुभ गंग नीर महं गुरु पद किंकर।
गोपद इव तरि गयो तुरित भव सिन्धु भयंकर॥
उर राखि श्याम मूरति रुचिर चढ़ि विमान आयी उमरि।
होइ गयो राम अभिरामपद दास रामहि सुमरि॥

इस प्रकार आप का स्वर्गारोहण हुए लगभग १४६ वर्ष हुआ। "आधो उमरि" के कहने से विदित होता है कि मृत्यु समय में आपकी अवस्था ५० वर्ष की रही होगी। इससे आपका जन्मकाल सं० १९९५ वि० के आस पास हो सकता है। संवत् १८१८ वि० में आपने रामाणंव बनाना प्रारम्भ किया है, जिसे अपने ग्रन्थ में लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि २५ वर्ष की आयु में रामाणंव की रचना का प्रारम्भ हुआ। रामाणंव के अतिरिक्त इनका और कोई बड़ा ग्रन्थ देखने में नहीं आता। (१) राम सर्वस्व (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) ज्वरांकुश अत्यल्प पद्यों के ग्रन्थ देखे जाते हैं।

आपकी कविता का रसास्वादन यदि पाठकों को कराया जाय तो इस लेख का आकार बढ़ जायगा। अतएव आपने राम का बाल रूप वर्णन एक जगह किया है, उस का कुछ अवतरण यहां देकर यह लेख समाप्त किया जाता है।

सोरठा

विचरहिं अजिर उदार, देखि मात पितु मुदित अति।
सो नहिं बरणै पार, शारद शेष महेश विधि॥

नील कंज पद पीठ सुहाये।
नख मानहु मनि गन बैठाये॥
सोन कंज सम पदतल सोहैं।
अंकुश आदि रेख तंह ओहैं॥
सोह मधुर धुनि पद मंजीरा।
जिन महं लगे अमोलक हीरा॥
कर मकराकृत सुन्दर बेरा।
मनहुं स्मर सुषमाकर केरा॥
कृशम कटि किंकिनि कल बाजै।
उर आपत त्रिवली छवि छाजै॥
नाभि गभीर सकल गुण थाली।
जहां सकल सुषमा प्रतिपाली॥
अरुण जलज सम पानि विराजै।
ता मंह राज रेख अति साजै॥
नख अलि अंभोकंज रस पाई।
होत मनहु अद्भुत अरुणाई॥
बांह विशाल वलय करण, भुज अंगद अतिराज।
उर मनि मध्य मृगेश नख मनु चन्दित विधुराज॥

इन्दु पै मलिन्द है

[ले० राम निहोरा प्रसाद "मल्ल"]

चन्द्रमुखी नायिका के नायक को कारो रंग;
मानों सित नील दुइ लसत [मलिंद है।
सुधा बिंद पर विष बिंद जिमि छाजे छवि;
जैसे शशि अंक मधि राजत कलिंद है॥
सांवरो सो मेघ ज्यों सु सोहे चपला के संग;
नैन बिच कारी पुतरीहू ज्यों फबिन्द है।
वैसो ही बढ़ायो मंजुता है "मल्ल" श्याम मिलि;
राधिका के साथ मानों "इन्दु पै मलिंद है"॥ १॥

दीपक-दीप्ति

(लेखक—महाकवि पं० प्रतापनरायण जी)

१

तेरी प्रशंसा क्यें, तू श्रेष्ठ और अनूप है ?
हे दीप ! इस संसार में, तू ब्रह्म का ही रूप है ॥

२

तू निज दशा को देख कर, होना कभी मत शोक में ।
है क्योंकि मिलता सुख नहीं उपकारियों को लोक में ॥

३

खाकर तिमिर तू ज्योति को उत्पन्न कैसे कर रहा ?
क्यों कालिमा से कान्तिमय ! तू गेह को है भर रहा ?

४

है जब जगत् की यामिनी तेरा दिवस होता तभी ।
उस काल तू सो जायगा जब जाग जाते हैं सभी ॥

५

कर प्राप्त उच्चासन सदा सम्मान पाकर के महा—
है प्राणियों को प्रेम से उपदेश तू यह दे रहा ॥

६

"मेरे सदृश ही जागती है ज्योति तुममें कान्तिमय ।
पर दीप्ति मेरी भ्रान्तिमय, है और वह सुख-शान्तिमय ॥

७

'मुझको जलाने से कभी उद्धार हो सकता नहीं ।
मन का अंधेरा बन्धुओ ! मुझसे मिटेगा क्या कहीं ?

८

उससे मिलाओ ज्योति को अपनी मिटाओ आपदा ।
जो जगमगाती ज्योति है सर्वत्र सबमें सर्वदा ॥

भगवान् का भरोसा

(ले०— श्री विलासरायजी डालिमियां)

आजकल लोग कहा करते हैं की संसार में जो कुछ किया है यह सब हमारे ही परिश्रम का फल है। जो सम्पत्ति हमारे पास है यह सब हमने हमारी बुद्धि, हमारे ही उद्योग से तथा अपनी भुजाओं के बल से पैदा की है। दैव बल वाले सदा दैव दैव पुकारा करते हैं। उन लोगों का यह कहना जब तक उनकी सम्पत्ति बनी रहती है तब तक तो वेद वाक्यवत् है। किन्तु जब रोजगार में घाटा हो जाता है, और कुव्यसनों में पड़कर अपनी भुजाओं की कमाई नष्ट करदेते हैं तब दैव याद आता है और कहने लगते हैं भाई दैव के आगे किसी का जोर नहीं। ऐसी स्थिति में करुणा-सागर, गरीब निवाज, दीनबन्धु, पतित पावन की याद आती है और वह अपने भूले हुये भक्त को अपने मार्ग पर आया देख कर उस पर दया का श्रोत बहा देते हैं। हमारे पुराणों में ऐसे ही अनेक भक्तों के उदाहरण हमारे सचेत कराने और एक-मात्र सर्व शक्तिमान पर ही भरोसा करने के लिये मिलते हैं। किन्तु तब भी हम उधर उधर ठोकरें खाते हैं और अन्त में उसी द्वार पर आके 'त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतवत्सलः" कहना पड़ता है तभी निस्तार होता है। पृथ्वी को उलट देने वाले ऐसे पराक्रमी पांचपतियों के देखते देखते ही विदुरजी जैसे नितिज्ञ जिस सभा में मौजूद हों, पितामह भिष्म, द्रोणाचार्य जैसे धर्म को जानने वाले और महान् पराक्रमी की आंखों के सामने एक अबला के ऊपर भयंकर अत्याचार होता हो, कहिये कहां गया भुजाओं का बल? नहीं नहीं जब तक द्रौपदी को अपने पति, अन्धे धृतराष्ट्र तथा विदुरादिकों का और अपना भरोसा रहा तब तक दुःशासन के हाथ से झिड़कियाँ, धक्के पर धक्का खाना ही पड़ा। अपनी लज्जा रखने के लिये अपनी भुजाओं का बल द्रौपदी ने भी काम नहीं किया अपने दोनों हाथों से एकमात्र साड़ी को दबाती ही रही किन्तु कहाँ तो दस हजार हाथियों का बल और कहां एक अबला। जब द्रौपदी ने देख लिया कि अब तेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं, अपनी भुजाओं के बलका भी भरोसा टूट गया पांचों पतियों ने भी आंखें चुराली, बड़े २ नीतिज्ञ और ज्ञानियों की भी जबान के ताला लग गया और सब तरफ से निराश हो गई तब मारीच की तरह उभय भांति सोचा निजमरण तब ताकेउ रघुपति कर शरणा उसी जगदाधार की, दैवबल की ओर झुकी, और निर्भय अपने हाथों को छोड़ कर एकमात्र हा कृष्ण! हा कृष्ण!! अब मेरी लाज तेरे हाथ है पुकारी बस हो गया, भुजाओं के बलका खातमा हो गया दूसरों के भरोसे का फिर क्या मजाल कि द्रौपदी के वस्त्र को दस हजार ही क्या दस लाख हाथियों के बल रखने वाला भी हटा सके।

कहा करै बैरी प्रबल जो सहाय रघुबीर।
दस हजार गजबल घट्यो घट्यो न ग्रसगज चीर॥

इसीका नाम है आत्मनिवेदन द्रौपदी ने सर्वस्व उनके अर्पण कर दिया उसी भक्तवत्सल को चीर रूप में प्रकट होना पड़ा और द्रौपदी की लाज, द्रौपदी की क्यों कहें भगवान ने अपनी लाज बचाली, अपनी भुजाओं के बल पर नाचने वालों को सचेत होना चाहिये और एकबार जगन्नियन्ता, जगदाधार, की माया की ओर देखना चाहिये "मम माया दुरत्यया" भुजाओं का बल इसी तरह गजेन्द्र को भी हुआ था क्या दशा हुई? स्वामी को नंगे पांव दौड़ना पड़ा। गजराज अकेला नहीं था हजारों कुटुम्बी उसके साथ थे। जब ग्राहने पकड़ लिया। तो साथी कुटुम्बियों ने भी जोर लगाया और खूब लड़े किन्तु गजेन्द्र को ग्राह के पंजे से न छुड़ा सके। तब हताश हो हो कर विचारों ने अपना रास्ता लिया अब गजेन्द्र अकेला ही रह गया। तो भी हिम्मत से लड़ता ही रहा क्योंकि आने भुजाओं के बलका भरोसा था। तभी "तयोरासीन्महद् युद्ध दिव्य वर्ष सहस्रकम्" एक हजार दिव्य वर्ष याने देवताओं के हजार वर्ष तक गजराज ग्राह से लड़ता रहा। बिचारे ने भुजाओं का बड़ा पराक्रम किया किन्तु एक न चली। अन्त में वही हुआ।

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोर कर्मणा।
परमापदमापन्नो मनसाचिंतयद्धरिम्॥
स तु नागवरः श्रीमान्नारायण परायणः।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा॥

यहाँ देरी कहाँ थी पुकार मचाने वाला चाहिये, निमिष मात्र की देरी में तो वहां काम तमामहोता था। स्वामी गरुड़ के वेग को भी कम समझ पियादे ही दौड़े और ग्राह के फन्दे में पड़े हुये आर्त गज की रक्षा अपने कर कमलों से की। यह तो है हजारों वर्षों की बातें अब का ताजा दृष्टान्त और देखिये।

अपूर्ण

वाक्य-सुधा

१ मन, वचन और कर्म द्वारा किसी मनुष्य के साथ द्वेष न करना, सब पर अनुग्रह रखना और सब की सदा सहायता करना ये कर्म, शीलवान् लोगों के नित्य करने के हैं।

२ जिनके पाप नष्ट हो गये हैं जो सुखादि द्वन्द्वों से छूट गये हैं, ऐसे पुण्यात्मा सज्जन ही दृढ़-व्रत हो कर परमात्मा को भजते हैं।

३ सत्य अविनश्वर ब्रह्म है, सत्य अविनश्वर तप है, सत्य अविनश्वर यज्ञ है और सत्य ही अविनश्वर श्रुति है। इस प्रकार सत्य की महिमा जानने वाला पुरुष, सर्व श्रेष्ठ और सर्व-प्रिय कहलाने योग्य है।

४ वही मनुष्य सब से बड़ा धनी है जो सब से कम पर सन्तोष करता है, क्योंकि प्रकृति का यथार्थ धन सन्तोष ही है।

५ आदर्श मनुष्य मृत्यु के पश्चात् भी शांत

दिशाओं तक ऐसा प्रकाश छोड़ जाता है जो मनुष्यों के पथ को सर्वदा आलोकित करता रहता है।

६ अगर तुम दिग्विजयी होना चाहो, तो पहले अपनी वाणी को जो दूसरों की निन्दा में लगी हुई है। अपने वश में करो, अर्थात् किसी की निन्दा मत करो।

७ पण्डित वही है जो परम ऐश्वर्य, विद्या और धन तथा समाज को पाकर कभी विनय और शील को नहीं तजता।

८ भविष्य में अधिकाधिक उपकार करने वाली, कार्य सिद्ध के उत्तमोत्तम फल को देने वाली, स्थैर्य कभी भी नाश न हो कर शत्रुओं का नाश करने वाली क्षमा के समान अन्य साधन संसार में नहीं है।

९ वह मनुष्य जिसका शरीर बलवान, दृढ और स्वस्थ है, हृदय विशाल और मन शुद्ध, पाप रहित है वही यथार्थ में धनवान है।

१० भक्त इसीलिये भगवान को अधिक प्यारा होता है कि वह अपनी ममता सब जगह से हटा कर केवल भगवान में कर लेता है। इसीसे उसका अनन्यानुराग और मुख्य बुद्धि भी भगवान में ही परिणत हो जाती है।

भजन।

(संग्रहकर्ता केशव देव ब्रह्मचारी)

१

सुनो मन झूंठा है संसार
नहीं यहां कुछ तत्व लगी है माया की बैजार ॥टेक॥
मात पिता सुत दारा बन्धु है झूठे मित्र हजार।
चला रहे हैं रंग विरंगे मतलब के व्यापार ॥ १ ॥
रीति यहां की सब उलटि है देखो नयन उघार ।
मनुष्य देह खाक की ढेरी दो दिन का शृंङ्गार ॥ २ ॥
ललचावो ना किसी तृष्णा में हो सबसे होशियार ।
ढूंढो चलो जहां रहता है परमेश्वर का प्यार ॥३॥

२

प्रेमनगर में बनाऊंगी घर में,
तजके सब संसार ।टेक।
प्रेम का आदर प्रेम की छत,
और प्रेम के होंगे दुवार ॥ १ ॥
प्रेम सखा हो प्रेम पड़ोसी,
प्रेम में दुःखा सार।
प्रेम के संग बितायेंगे जीवन,
प्रेम ही प्राणाधार ॥२॥
प्रेम सुधा से स्नान करूंगी,
प्रेम से हो गद गद।
प्रेम ही धर्म है प्रेम ही कर्म है,
प्रेम ही सत्य विचार ॥३॥

३

तरफत बीते दिन रैन ॥ टेक ॥

कैसे आवे मोहे चैन ।
निस दिन विरहा तोरा सतावे,
रात कटे गिन गिन के तारे,
ढूंढत नैना सांझ सकारे ॥
आवो सुनावो मन के मांझी,
मधुर मधुर बैन ॥

४

जाऊं तोरे चरण कमल वार ॥टेक॥
हे गोपाल गोविन्द मुरार,
शरणागत हूं द्वार तिहार ॥१॥
अनगिन दुरित भरोह हूं मैं,
जड़मति किस विध पाऊं ।
चतुर तुमरे पद तुमही,
जनके एक आधार ॥ २ ॥

५

कहीं हूं राम कहीं हूं श्याम,
सकल विश्व में है विराम ॥टेक॥
तारा है मैंने ही सदन कसाई,
तारा है मैंने ही सैना नाई ।
प्रेम ने डाला है पावों में फन्दा,
भक्त का मैं भी भक्त बताहूं ॥

६

हरिहं नाम सुमरले भाई,
तोरी बिगड़ी बात बन जाई ॥टेक॥
ऐसा ध्यान करो शंकर का,
छोड़ो कपट चतुराई ।
सेवा बन्दगी और अधीनता,
सहज राम मिल जाई ॥ १ ॥
स्याही गई सफेदी आई,
अबतो चेत करो मेरे भाई ।
तैंने बिरथा उमर गंवाई,
जपले ना रघुराई ॥२॥

७

सब से ऊंची प्रेम सगाई ॥ टेक ॥
दुर्योधन की मेवा त्यागी ।
साग विदुर घर खाई ॥ १ ॥
झूठे फल शबरी के खाये ।
बहु विध प्रेम लगाई ॥ २ ॥
प्रेम के बस नृप सेवा कीन्हीं ।
आप बने हरि नाई ॥ ३ ॥
राजसु यज्ञ युधिष्ठिर केरा ।
तामें झूंठ उठाई ॥ ४ ॥
प्रेम के बस अर्जुन रथ हांक्यो ।
छांड दई ठकुराई ॥ ६ ॥
असो रास रच्यो वृन्दावन ।
गोपियन नाच नचाई ॥ ७ ॥
सूर कूर इस लायक नाहीं ।
कहां लग करत बड़ाई ॥ ८ ॥

८

जो राम नाम गुण गाता है ।
याके हृदय में राम समाता है ॥
जो साधु सन्त कहलाते हैं ।
जंगल में धूनि रमाते हैं ॥
भज राम भज राम भज राम,
राम राम भज राम भज राम ।
भज राम भज राम ॥ १ ॥

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	।)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	"	।।)
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)।।
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	"	।।)
११.	शब्द सार संग्रह	"	।)
१२.	शब्दसंग्रह	"	।।)
१३.	सारसंग्रह	"	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	"	=)।।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	"	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८.	भगवदंक	"	।।)
१९.	गवांक	"	।)
२०.	महात्मांक	"	।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।